मीराबाई का काव्य



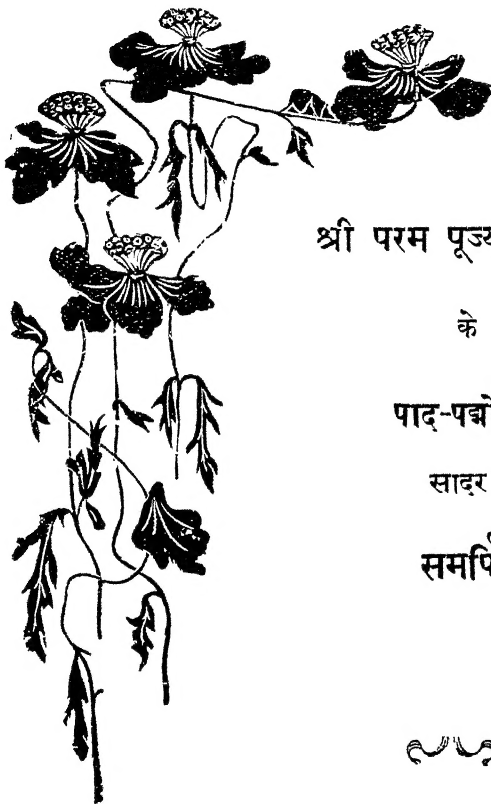
श्री मुरलीधर श्रीवास्तव बी० ए०, एल-एल० बी०
साहित्यरत्न (गोल्ड-मेडेलिस्ट)

प्रकाशक
साहित्य-भवन लिमिटेड,
प्रयाग।

प्रथम संस्करण, ५००] १९३४ [मूल्य ॥)

प्रकाशक—
साहित्य-भवन लिमिटेड,
प्रयाग।

मुद्रक
गिरजाप्रसाद श्रीवास्तव
हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।



श्री परम पूज्य पिताजी

के

पाद-पद्मों में

सादर

समर्पित

मुरली



परिचय

मैथिल-कोकिल विद्यापति के समान हिन्दी काव्य-कानन-कोकिला मीराबाई के पदों का भी कोई प्रामाणिक संग्रह हिन्दी में अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका है। मीराबाई के नाम से प्रचलित पद-समूह का भी कोई ऐसा छोटा संक्षिप्त संस्करण नहीं था जिसमें हिन्दी-विद्यार्थी तथा साधारण पाठक की आवश्यकता को दृष्टि में रक्खा गया हो। प्रस्तुत पुस्तक में संग्रहकर्ता ने इस दूसरी आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयत्न किया है। आलोचना, टिप्पणी तथा अन्तर्कथाओं के देने से इस क्रम-बद्ध संग्रह की उपादेयता और भी अधिक बढ़ गई है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी-प्रेमी मीराबाई के इस संग्रह से पूर्ण लाभ उठाने का यत्न करेंगे। हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में अपने प्रिय शिष्य श्री मुरलीधर श्रीवास्तव से भविष्य में मुझे और भी अधिक आशायें हैं। मुझे इस बात से विशेष सन्तोष है कि हिन्दी विभाग से सम्बन्ध छूट जाने पर भी इन्होंने अपने साहित्य-प्रेम को शिथिल नहीं होने दिया। आशा है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन से प्रोत्साहित होकर यह होनहार नवयुवक लेखक इससे भी बड़े कामों को हाथ में लेंगे और उन्हें पूर्ण करने का साहस कर सकेंगे। मेरा हार्दिक आर्शीवाद साथ में है।

हिन्दी-विभाग,
विश्वविद्यालय, प्रयाग।
१-१२-१९३१

धीरेन्द्र वर्मा

प्रस्तावना

सुधोपम काव्य-मकरन्द के रसिक एवं लोलुपी भ्रमरों के सम्मुख हमें यह मधु-सिचिंता काव्य-कलिका रखते हुये पूर्ण विश्वास है कि इसका अतुल मनोहारी सौन्दर्य, इसकी मोहिनी माधुरी, मानव हृदय की सुकुमार वृत्तियों की व्यंजना, मीरा के भक्ति-पूर्ण हृदय एवं पीयूषवर्षिणी लेखनी से निःसृता भक्ति-उद्‌भाविनी एवं प्रेम-प्रसविनी कविता का रसास्वादन कर वे अपने को कृतकृत्य मानेंगे। क्षण भर के लिये उनके हृदय में यह अभिलाषा अंकुरित होगी कि, चलें इस नवीन कलिका के मंजुल कोष में, उसकी मृदुल भावना की पँखुरियों की गुल-गुल शय्या पर विश्राम का आनन्द लूटें। निस्सन्देह मीरा की कविता ऐसी ही मनोहारिणी है; चाहे वह सूर की रचना के समान अलंकार-मंडित न हो, चाहे उसमें तुलसी का सर्वांगीण सौन्दर्य एवं बिहारी की सुकुमार कल्पना का दृश्य हमें देखने को न मिले; किन्तु उसमें रमणी-हृदय के प्रेम और भगवद्भक्ति का ऐसा सुन्दर समावेश है, वह प्रसाद-गुण से इतना पूर्ण है कि रसिकों का हृदय अपनी ओर बरबस आकर्षित करने में सर्वथा समर्थ है।

रमणी-रत्न मीरा के काव्य का यह अध्यन, मातृभाषा के साहित्य की अभिवृद्धि का सहायक होगा, इसी विश्वास ने लेखक

को इस प्रयास की ओर अग्रसर किया है। हमारा उद्देश्य साहित्य-प्रेमियों, हिन्दी के विद्यार्थियों, एवं भक्तों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर रहा है। अतः हमने मीरा की जीवनी, काव्य की आलोचना, टीका, परिशिष्ट आदि देकर पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है। हम अपने प्रयत्न में कहाँ तक सफल हुये हैं, इसके निर्णय का हमें अधिकार नहीं है। माता सरस्वती की पूजा में यदि हम परिमल एवं पराग से पूर्ण सरोज नहीं चढ़ा सकते तो क्या यह कनेर का फूल भी न चढ़ावें?

अंत में मैं हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान श्रद्धेय गुरुवर धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए० के प्रति अपनी कृतज्ञता का प्रकाश करता हूँ, जिन्होंने मेरे उत्साह को सदा परिवर्धित किया है।

चौसा (शाहाबाद)
ता० १०-५-१९३२ } मुरलीधर श्रीवास्तव्य



मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।

—मीराबाई

जीवन-वृत्त

हिन्दी के अनेक प्रसिद्ध कवियों के समान, हमें मीराबाई के जीवन के सम्बन्ध में बहुत कुछ किम्बदन्तियों से ही सन्तोष करना पड़ता है। उनकी रचनाओं से भी कुछ सामग्री प्राप्त नहीं होती जिसके आधार पर उनका समय निश्चित किया जा सके। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों ने कल्पना के सहारे जो समय निर्णीत किया, वह असंदिग्ध नहीं है। मीरा का समय निश्चित करने में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग मीरा का जन्म सन् १४०३ ई० बताते हैं तो अन्य विद्वान १५१६ ई०। इतना अधिक मतभेद होने के कारण हमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। 'नरसी जी का मायरा' से हमें केवल यही पता चलता है कि मीरा का जन्म क्षत्रिय कुल में मेड़ता में हुआ था। मीरा लिखती है:—

क्षत्री वंश जनम मम जानो नगर मेड़तै बासी।
नरसी को जस परन सुनाऊँ नाना विधि इतिहासी ॥

ऐनेल्स ऑव राजस्थान (Annals of Rajasthan) के विद्वान लेखक ने राजस्थान में प्रचलित जनश्रुति के आधार पर राणा कुम्भकर्ण के शिवालय के पास मीराबाई का मन्दिर देख कर एवं राणा कुंभ की साहित्यिक योग्यता देख कर यह लिखा है कि:—

"अपने पिता की गद्दी पर सन् १४९१ ई० में बैठने वाले राणा कुम्भ ने मारवाड़ के मेड़ता वंश की कन्या मीराबाई से विवाह किया था जो अपनी सुन्दरता तथा सच्चरित्रता के लिये बहुत प्रसिद्ध थीं और जिनके रचे हुए अनेक प्रशंसनीय गीत अभी तक सुरक्षित हैं।"

टॉड ऐसे विद्वान की सम्मति से अनेक विद्वान प्रभावित हुए और गुजराती विद्वान् गोवर्धन राय माधव राय त्रिपाठी ने इसका समर्थन किया। Mile Stones in Gujrati Literature के लेखक श्री कृष्णलाल मोहनलाल जी झावेरी ने मीरा का जन्म १४०३ ई० के निकट और मृत्यु सन् १४७० में माना है। इसी प्रकार सरोजकार ठाकुर शिवसिंह जी ने भी मीरा का जन्म संवत् १४७० (१४१३ ई०) के लगभग माना है और मीरा का विवाह राणा कुंभकर्ण जी से मानते हैं।

इन सब लेखकों ने टॉड महोदय की सम्मति मानी है पर जिस आधार पर टॉड महोदय ने यह सम्मति निश्चित की है वह 'बालू की भीत' की तरह कमजोर है। राणा कुंभ की योग्यता के कारण मीरा से विवाह मानना 'मीराबाई का मंदिर' कहलाने से उसे मीरा द्वारा निर्मित मानना, अधिक युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जी 'मीरा बाई का मंदिर' को राणा कुंभ द्वारा निर्मित बतलाते हैं। अतः कर्नल टॉड का मत सर्वथा अशुद्ध और भ्रान्ति-मूलक है। यह तो निश्चित है कि मीरा का जन्म मेड़ता के राजकुल में हुआ था। ठाकुर गोपाल सिंह राठौर मेड़तिया द्वारा 'मीराबाई' शीर्षक लेख (सुधा वर्ष १, खंड २—संख्या १, पृ० १७२) में लिखते हैं कि:—

"मेड़ता का अधिकार जोधपुर के राव जोधा जी के चतुर्थ पुत्र दूदा जी ने, मुसलमानों को परास्त कर वि० सं० १५१८ में प्राप्त किया। राव दूदा जी के ज्येष्ठ पुत्र वीरम देव जी का जन्म वि० सं० १५३४ में हुआ। मीराबाई वीरम देव जी के कनिष्ठ भ्राता रत्नसिंह जी की पुत्री थीं। महाराणा कुंभा जी के देहान्त के नौ बरस बाद मीराबाई के पिता के बड़े भाई वीरम देव जी का जन्म हुआ। अतः मीराबाई का महाराणा कुंभा जी की राणी होना

सर्वथा असंभव है। वास्तव में मीराबाई महाराणा सांगा जी के युवराज भोजराज जी को ब्याही गई थीं, जैसा कि मेवाड़, मारवाड़ और मेड़ते की तवारीखों में लिखा हुआ है। टॉड साहब के ही आधार पर अन्य भी बहुत-से ग्रन्थों में मीराबाई को महाराणा कुंभा जी की राणी मान लिया गया है, जो सर्वथा भ्रममूलक है।"

ठाकुर साहब का यह कहना कि टॉड साहब का विचार अशुद्ध है, ठीक है। उन्हीं के आधार पर अन्य लेखकों ने भी आँख मूँद उनका अनुमोदन कर राणा कुंभा जी को मीरा का पति मान कर भ्रान्ति फैलायी है। 'हिन्दी-विश्वकोष' ऐसे प्रामाणिक ग्रंथ में भी मीरा के जीवन के सम्बन्ध में इस मत का अनुमोदन किया गया है और सुन्दर काव्यमय भाषा में लिखित मीरा का चरित कदापि माननीय नहीं है। (देखिये हिन्दी-विश्वकोष भाग 'म')

जोधपुर के संस्थापक राव जोधाजी के चतुर्थ पुत्र राव दूदा जी थे। राठौड़ की प्रसिद्ध मेड़तिया—शाखा का प्रारम्भ इन्हीं से हुआ। राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह जी थे, जिनको निर्वाह के लिये जागीर में कुडकी, बाजोली आदि बारह गाँव मिले थे। रत्नसिंह जी की एक मात्र पुत्री का नाम मीराबाई था। ठाकुर साहब मीरा का जन्म वि० सं० १५५५ के निकट मानते हैं। जोधपुर के मु० देवी प्रसाद मुंसिफ़ मीरा का जन्म वि० सं० १५७३ में मानते हैं, और विषयों में दोनों लेखकों में एकता है, केवल मुंशी जी मीरा का जन्म चोकड़ी गाँव में, और ठाकुर साहब कुड़की गाँव में मानते हैं। ठाकुर साहब ने डा० ग्रियर्सन का मत माना है। डा० ग्रियर्सन मीरा का जन्म कुड़की गाँव में मानते हैं और उनके मत का समर्थन रा० ब० सीताराम जी ने भी अपने Seleicons from Hindi Literature Book

II में किया है। पं० रामचन्द्र शुक्ल जी ने मुं० देवी प्रसाद जी के मत को माना है। बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित प्रति में मीरा का जन्म संवत् १५५५ और सं० १५६० के बीच में माना है। इन मतभेदों के रहते हुये हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि मीरा ने वि० सं० १५६० के लगभग जन्म ग्रहण किया। कुड़की के चारों ओर चालीस मील की भूमि अब भी मीराबाई का देश कही जाती है।

बाल-काल

मीरा के कृष्ण-प्रेम की जड़ बाल्यावस्था में ही जम चुकी थी। उसकी भक्ति संस्कार-मूलक थी, अतः उसे बाल्यावस्था में भगवद्भक्ति में रुचि हो गई थी। मीरा की माता का बाल्यावस्था में ही देहान्त हो गया था अतः वह मातृ-प्रेम की शीतल धारा से वंचित रही। पर इसका परिणाम यह हुआ कि माता के देहान्त के पश्चात् मीरा के पितामह राव दूदा जी ने मीरा को बुला कर अपने पास मेड़ते में रख लिया। रावदूदा जी भगवान के परम भक्त थे, और मीरा के बाल-हृदय पर दादा की भगवद्भक्ति का अवश्य प्रभाव पड़ा होगा। मीरा भावुक थी, अतः भगवद्भक्ति में उसका सरल हृदय लीन हो गया। वह स्वयं कहती है :—

बालापन ते मीरा कीन्हीं गिरधर लाल मिताई।
सो तो अब छूटत क्यों हू नहिं, लगन लगी बरियाई॥

उस विशाल-प्रेम-वृक्ष का, जिसकी शाखाओं ने उसके हृदय-देश को पूर्णतः छा लिया था, अंकुर 'बालापन' में ही उसके हृदय में जम चुका था। ऐसी कथा है कि मीरा के पड़ोस में एक कन्या का विवाह हुआ, बारात आई, इस आनन्द-पूर्ण उत्सव को देख कर मीरा ने माँ से कहा, "माँ, मेरा दूल्हा कौन है?" माता ने

हँस कर, कृष्ण रणछोर की मूर्ति की ओर इशारा कर उत्तर दिया, "बेटी! तेरे ये ही दूल्हा हैं।" मीरा के बालकाल की कृष्णभक्ति की सूचक एक कथा और प्रसिद्ध है। एक बार मीरा के बाप के घर में एक साधु ठहरा जिसकी पूजा में गिरधरलाल की मूर्ति थी। मीरा ने साधु से वह मूर्ति माँगी पर साधू ने अस्वीकार कर दिया; मीरा ने मूर्ति न पाकर हठ धरा और तीन दिन तक कुछ नहीं खाया। पिता-माता ने साधु को बहुत कुछ देकर विनय पूर्वक प्रसन्न करना चाहा पर साधु ने मूर्ति देना अंगीकार न किया। रात्रि में साधु को भगवान का स्वप्न में दर्शन हुआ और भगवान ने कहा कि यदि तुम भला चाहते हो तो हमको उस लड़की के पास रहने दो। साधु ने भोर होते ही मूर्ति को मीरा के पिता के घर पहुँचा दिया।

राव दूदा जी का देहान्त वि० सं० १५७२ में हुआ। उनके ज्येष्ठ पुत्र राव वीरमदेव जी के सिंहासनासीन होने पर उनके प्रयत्न से मीरा का विवाह वि० सं० १५७३ (सन् १५१६ ई०) में चित्तौड़ के प्रसिद्ध राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार भोजराज जी के साथ हुआ। भगवान की इच्छा नहीं थी कि मीरा राणी बने; दुर्भाग्यवश, विवाह के कुछ वर्षों बाद वह विधवा हो गई। लगभग वि० सं० १५८० के भोजराज जी का देहान्त हुआ। और मीरा के पिता सांगा और बाबर वाले बयाने के युद्ध (वि० सं० १५८४) में काम आये। महाराणा सांगा के पश्चात् भोजराज जी के सहोदर कनिष्ठ भ्राता रत्नसिंह जी गद्दी पर बैठे; पर वे भी वि० सं० १५८८ में स्वर्गवासी हो गये। उनके उपरान्त उनके सौतेले भाई विक्रमादित्य जी चित्तौड़ के महाराणा हुये। इधर वैधव्य और घरेलू विपत्तियों के कारण मीरा को संसार से पूर्णतः विराग हो गया।

उसने साधु-संगत और भगवत-भजन में जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर लिया। वह सदा साधु-सेवा में निरत रहने लगी और भक्ति ही उसके जीवन का प्रधान अंग हो गया। वह स्वतन्त्र हो कर महल से निकल कर मन्दिरों में जाने लगी। साधुओं की सेवा, कृष्ण की पूजा में लीन हो गई। यह अवस्था यहाँ तक पहुँची कि वह खुले तौर से हाथ में करताल लेकर मंदिरो में नाचने लगी और कभी कभी वह श्री चैतन्य देव के समान उद्भ्रान्त हो जाती। ऐसी अवस्था राणा रत्नसिंह और राणा विक्रमाजीतसिंह को सर्वथा असह्य थी। राजकुल की वधू का ऐसा स्वतन्त्र चरित्र भला उन्हें कैसे पसन्द आता? महाराणा इस भक्त रमणी की भक्ति व महत्व को नहीं समझ सके, उन्होंने मीरा को बहुत समझाया किन्तु उसने तो अपना जीवन-पथ निश्चित कर लिया था। अन्त में मीरा की इस अवस्था से रुष्ट हो कर राणा ने उसके प्राण हरने का प्रयत्न किया, किसी दयाराम पंडा के हाथ कृष्ण के चरणामृत के बहाने विष भरा प्याला भेजा, पर मीरा ने भगवान का प्रसाद समझ कर विष का प्याला उठा कर पी लिया। कहा जाता है कि मीरा पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। मीरा के भक्ति-पथ पर राणा द्वारा काँटा बोये गये, पर उसने उनकी परवाह न कर उसी पथ का अनुसरण किया और अंत में भक्तों की श्रेणी में उच्च आसन की अधिकारिणी हुई। मीराबाई का जीवन संग्राममय है, और अन्त में वह संग्राम में विजयिनी हुई। कहा जाता है कि विष भेज कर विफल प्रयास होने पर राणा ने फिर साँप का पेटारा मीरा के पास भेजा, पर वह साँप का पेटारा शालिग्राम की मूर्ति में परिणत हो गया! यह सब कथायें, उसकी प्रगाढ़ भक्ति की द्योतक हैं और भक्तों के हृदय में भगवान के प्रति असीम विश्वास उत्पन्न

करती हैं। इन दोनों घटनाओं का उल्लेख स्वयं मीरा ने किया है:—

विष रा प्याला राणा जी भेज्यो दीज्यो मेड़तणी के हाथ।
कर चरणामृत पी गई, म्हाँरा सबल धणी का साथ।
जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अंचाय।
साँप पिटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखन लागी, हो अमर अंचाय।

इस प्रकार से मीरा पति-गृह में कष्टों से पीड़ित हो रही थी, उसके कारण कुटुम्बियों की निन्दा होने लगी और उसकी लोग निन्दा करने लगे। ऐसा प्रचलित है कि ऐसी ही अवस्था में मीरा ने गोस्वामी तुलसीदास जी के पास एक पत्र लिखा जिसमें सारे कष्टों को प्रगट करते हुये उनसे सलाह माँगी गई है। यद्यपि इस किम्बदन्ती में ऐतिहासिकता नहीं है, पर पाठकों की जानकारी के लिए लिखना उचित जान पड़ता है। मीरा ने गोसाईं जी के पास यह पद लिख कर भेजा—

श्री तुलसी सुख निधान दुख हरन गुसाईं।❀
बारहिं बार प्रनाम करूँ, अब हरो सोक समुदाई।
घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अस भजन करत, मोंहि देत कलेस महाई।
बालपने ते मीरा कीन्ही, गिरिधर लाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई।
मेरे मात पिता के सम हौ हरि भक्तन सुखदायी।
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखियो समुझाई।

❀ इस पंक्ति का ऐसा पाठ भी मिलता है:—
स्वस्ति श्री तुलसी कुल-भूषण, दूषण हरन गुसाईं।

कहा जाता है कि गोसाईं जी ने इस पत्र का यह उत्तर दिया:—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कन्त ब्रज बनितन, भे सब मङ्गलकारी।
नातो नेह राम सों मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँख जो फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं।
तुलसी सो सब भाँति परम हित, पूज्य प्रान तें प्यारो।
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो।
सो जननी, सो पिता, सोई भ्रात,
सो भामिन, सो सुत सो हित मेरो।
सोई सगो, सो सखा, सोई सेवक,
सो गुरु, सो सुर, साहिब चेरो।
सो तुलसी, प्रिय प्रान समान,
कहाँ लौं बताइ कहौं बहुतेरो।
जो तजि गेह को, देह को, नेह,
सनेह सों राम को होय सबेरो।

इस किम्बदन्ती में सचाई नहीं है क्योंकि तुलसीदास जी का जन्म साहित्य-संसार में १५८९ वि० सं० माना जाता है। गोसाईं जी की ख्याति रामचरितमानस लिखने के बाद देशव्यापी हुई होगी और रामचरितमानस का प्रारम्भ वि० सं० १६३१ में हुआ था। इस समय मीरा की मृत्यु हो चुकी थी अतः यह किम्बदन्ती सत्य नहीं है। सम्राट अकबर वि० सं० १५९९ में पैदा हुआ था अतः मीरा से उसकी और तानसेन की भेंट भी असम्भव जान पड़ती है, क्योंकि उस समय अकबर की अवस्था अधिक नहीं थी।

मीरा को जब घर के कष्ट असह्य हो गये, और उसके हृदय में तीव्र वैराग्य जागरित हो गया, तब उसने अपना शेष जीवन अपने आराध्य देव की लीला-भूमि में व्यतीत करना निश्चित कर लिये। राणा के सारे प्रयत्न निष्फल हुये, और मीरा स्वतन्त्र हो कर भक्ति पद पर विचरण करने लगी। मीरा सत्याग्रह के प्रबल अस्त्र से राणा की शक्तियों पर बिजयिनी हुई; मीरा स्वयं अपनी विजय का साभिमान वर्णन करती है।

"मीरा प्याला पी लिया रे बोली दोउ कर जोर।
तैं तो मारण की करी रे, मेरो राखणहारो और।
आधे जोहड़ कीच है रे, आधे जोहड़ हौज।
आधे मीरा एकली रे, आधे राणा की फौज।
काम क्रोध को डाल के रे, सील लिये हथियार।
जीती मीरा एकली रे, हारी राणा की धार।"

ननँद ऊदाबाई ने बार बार समझाया कि तेरे चरित से दोनों कुलों पर कलंक लग रहा है, साधुओं के साथ भजन-कीर्तन से राजकुल की मर्यादा पर आघात पहुँचता है। पर मीरा का ध्येय निश्चित हो चुका था, वह भला कैसे मान सकती थी? अन्त में मीरा के कष्टों का वृत्तान्त सुनकर उनके चचा राव वीरम देव जी ने उसे मेड़ते में अपने निकट रखना चाहा; पर मीरा वहाँ भी नहीं रह सकी। वि० सं० १५९५ में राव मालदेव जी ने राव बीरमदेव जी से मेड़ता छीन लिया और उधर विक्रमाजीत सिंह जी को मार कर चित्तौड़ की गद्दी पर बनवीर बैठ चुका था। दोनों कुलों पर विपत्ति देख कर मीरा ने तीर्थाटन करने का निश्चय किया और मथुरा-वृन्दावन पहुँची। व्रज की भूमि का दर्शन कर मीरा अत्यन्त प्रसन्न हुई, उसके हृदय की चिर अभिलाषा पूर्ण हुई।

"वा दिन कबहूँ होयगो श्री वृन्दावन माँझ ?
हरिलीला में होइहौं मगन सबेरे-साँझ ?"
"जिन कुंजन गोपिन सहित केलि कीन्ह भगवान।
अहो भाग्य मैं देखि हौं, धन्य न मो सम आन।"

तीन ही वर्षों के बाद वि० सं० १६०० में वीरमदेव जी ने मेड़ते पर फिर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। राज्यों के पुनरुद्धार के उपलक्ष में दोनों स्थानों के नरेशों ने मीराबाई को द्वारका-धाम से बुलाने की चेष्टा की और वीरमदेव जी के ज्येष्ठ पुत्र राव जयमल्ल जी ने कुछ भी उठा नहीं रक्खा पर मीरा ने लौटना अंगीकार न किया। द्वारका-धाम की पुनीत रज में परम-भक्त मीराबाई ने अपना शरीर छोड़ा। मीरा के जीवन काल में ही उसकी कीर्ति का सौरभ दिगन्त में व्याप्त हो चुका था, उसकी गहरी भक्ति से जनता उसकी ओर आकर्षित हो चुकी थी। नाभादास जी ने उसका यश अपने भक्तमाल में बड़ी श्रद्धा के साथ अंकित किया है।

मीरा का काव्य

मीरा का जन्म ऐसे समय में हुआ था जब भारतवर्ष का वातावरण, उदार-हृदय महात्माओं की सरस तथा शांतिदायिनी वाणी से गूँज रहा था। देश के भिन्न भिन्न कोने में जनता के सम्मुख सन्तों का भक्ति-सन्देश रखा गया। चैतन्य की भक्ति और प्रेम-पूरित वाणी बंग भूमि के घर घर में गूँज रही थी, वल्लभाचार्य और स्वामी रामानन्द ने परम भाव का, भगवद्भक्ति का दर्शन कराया और उस दिव्य सन्देश का वाहक सूरदास तथा गो० तुलसीदास ऐसे महाकवियों को बना कर उस सन्देश को अमर बना दिया। चारों ओर जनता के हृदय के सम्मुख

भक्ति और भक्ति-मिश्रित अद्वैतवाद का रहस्य रखा गया; वह वातावरण धार्मिक चर्चा से पूर्ण होने के कारण ऐसा पवित्र एवं धन्य था कि उसमें अनेक ऐसी महान आत्माओं का जन्म हुआ जिनकी भगवद्भक्ति और प्रेम हमें विवश करता है कि हम उनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करें, अपने हृदय के आसन पर उन्हें आसीन करें और उनके पावन चरित्र का अनुकरण कर अपने जीवन को सफल बनावें। ऐसे ही महान आत्माओं में पावन प्रेम की प्रतिमा, महिला-रत्न राजस्थान की मीराबाई थीं।

मीराबाई श्रीकृष्ण की परम भक्त थीं। प्रेम का यह कोमल अंकुर बालापन में ही उसके हृदय में जम चुका था, अवस्था के विकास के साथ साथ, यह अंकुर प्रतिदिन हरा भरा और लहलहाता गया, धीरे धीरे पल्लवित और कुसमित होकर समग्र हृदय में फैल उठा, एवं हृतपिण्ड की रक्तवाहिनी धाराओं ने उसके प्रभाव को शरीर के रग-रग में, रोम-रोम में पहुँचा दिया। आराध्य देव की भगवद्भक्ति ने उसके हृदय को गंगा की पावन धारा के समान निर्मल कर दिया, उसका जीवन पवित्र हो उठा। कबीर के शब्दों में 'रंचक रति के संचरे सब तन कंचन होय' उसका सारा शरीर कंचन के समान निर्मल और प्रभा-पूर्ण हो गया। जब उसके हृदय में केवल एक ही भावना रह गई तब उस हृदय से निकली वाग्धारा में प्रेम की भावना के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है? अतः उसके काव्य का वस्तुतः एक ही विषय है, चाहे हम उसे प्रेम कहें या भक्ति। प्रेम और भक्ति में वस्तुतः कोई भेद नहीं, हम ईश्वरोन्मुख प्रेम को ही भक्ति कह कर पुकारते हैं। अतएव मीरा की कविता का मुख्य विषय है 'प्रेम' और संसार के प्रत्येक देश के कवियों की कविता का प्रधान विषय 'प्रेम' और

'प्रकृति' रहा है; कवियों ने उसके स्वरूप, उसकी मादकता और उसकी मधुरिमा का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया। वर्जिल, डान्टे, ग्येटे, उमर खैयाम, शेक्सपियर, कालिदास, सूरदास तथा रवीन्द्रनाथ ने, सभी ने, प्रेम-कोष की संचित निधियों का, उसके भुवन मोहन रहस्यों का उद्घाटन किया; पर सम्भवतः अभी तक प्रेम की कुछ बारीकियाँ छिपी हुई हैं, जिसकी खोज में कवि-गण अपनी प्रतिभा का प्रयोग कर रहे हैं।

मीराबाई के प्रेम-वर्णनों में एक निराला आनन्द-स्वाद है, उसके 'प्रेम की पीर' में एक मादकता और मधुरिमा है, जो हिन्दी के अन्य कवियों में नहीं मिलती। इसका कारण है कि उसका प्रेम-वर्णन स्वानुभूति के आधार पर स्थित है, उसका रमणी हृदय अधिक कोमल होने के कारण, प्रियतम में तल्लीनता के लिए अधिक उपयुक्त है। उसके हृदय में अपने प्राणाधार, अपने स्वामी और अपने सर्वस्व 'गिरिधर गोपाल' के प्रति अगाध प्रेम है, वह विवाहित होने पर भी गिरिधर को ही अपना पति मानती है। सच्ची प्रेमिका की तरह, वह अपने प्रियतम आराध्य देव से मिलने के लिये, कुल की लाज, समाज की निन्दा की परवाह न कर, सारे बन्धनों को तोड़ कर, परिणीत स्वामी को छोड़ उस स्वामी से सम्बन्ध जोड़ती है, जिसकी वधू बनने पर उसे वैधव्य के कठिन दुःख का भय नहीं और जहाँ वह चिर आनन्द में जीवन व्यतीत करेगी।

"झूठे बर को क्या करूँ जी, जो आधे में तज जाय।
बर बराँ ला राम जी, म्हारो चूड़ों अमर हो जाय" ॥

मीरा ने 'पति परमेश्वर' का सिद्धान्त न मान कर 'परमेश्वर पति' का सिद्धान्त माना। कुछ लोग मीरा को इस कारण पतिद्रोही कह उठते हैं, पर वे यह कहते हुये मीरा को एक

साधारण गृहस्थ की कसौटी पर कसते हैं, और भक्तों के उस आदर्श पर दृष्टि नहीं डालते, जिसे विनयपत्रिका में भक्तप्रवर गोस्वामी जी ने दिखाया है।

"जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, यद्यपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितन, भे सब मंगलकारी।
...आदि।

तब क्या हम प्रह्लाद को पिता-द्रोही, भरत को मातृद्रोही, विभीषन को बन्धु-द्रोही और गोपियों को 'कान्त-द्रोही' कहें? अस्तु।

प्रेम में तल्लीनता के कारण मीरा की दशा उद्भ्रान्त सी हो जाती है, वह प्रेम में पागल हो कर, दीवानी होकर, नाचने लगती है। वह स्वयं कहती है, मैं तो प्रेम में दीवानी हूँ, मेरा दर्द कोई नहीं समझता।

"हे री, मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस बिध सोना होय!
गंगन मंडल में सेज पिया की, किस बिध मिलना होय!
मेरा दरद न जाने कोय।
घायल की गत घायल जानै, की जिन लाई होय।
जौहरी की गत जौहरी जानै, की जिन जौहर होय।
मेरा दरद न जाने कोय।
दरद की मारी बन बन डोलूँ, बैद मिला नहिं कोय।
'मीरा' की प्रभु पीर मिटैगी जब वैद सँवलिया होय।
मेरा दरद न जाने कोय।

यह उद्भ्रान्त प्रेम और यह प्रेम की पीर, मीरा के जीवन की विशेषता थी, इसीलिये यह इतनी मर्म-स्पर्शिणी और

मनोहारिणी रचना है। सीधे-सादे शब्दों में इस हृदय की कथा का जो प्रभाव है, वह अलंकार से लदी हुई कविता में कहाँ? सच्ची कविता तो वही है जो कवि-हृदय से निकल कर तीर की तरह हृदय को बेध दे।

मीरा कहती है:—

धान न भावे, नींद न आवे विरह सतावे मोय।
घायल सी घूमत फिरूँ (रे) मेरा दरद न जानै कोय।
दिवस तो खाय गमायो (रे) रैन गमाई रोय।
प्राण गमायो भूखाँ (रे) नैन गमाई रोय।
जो मैं ऐसा जानती (रे) प्रीति किये दुख होय।
नगर ढिंढ़ोरा फेरती (रे) प्रीति करो मत कोय।
पंथ निहारूँ, डगर बुहारूँ, ऊबी मारग जोय!
मीरा के प्रभु कबरे मिलोगे? तुम मिलियाँ सुख होय।

जहाँ प्रियतम से मिलने के लिये प्रेमिका ऐसी उत्सुक हो, वह भला कब तक प्रियतम के चरणों से विलग रह सकती है? किन्तु जब कभी वह प्रियतम के विरह में अत्यन्त व्याकुल हो उठती है, और उसे वियोग असह्य हो उठता है, वह कह उठती है, उफ़ यदि मैं जानती कि प्रेम में इतना दुःख सहना पड़ता है तो ढ़िँढोरा पिटवा देती कि आज से कोई प्रेम न करना, प्रेम में बहुत कष्ट है, यहाँ सूली की सेज पर सोना है। प्रेम मार्ग की कठिनता और उसके दुःख को सभी प्रेमी कवियों ने दिखाया है। कबीर के शब्दों में—

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय,
राजा-परजा जेहि रुचै सीस देइ ले जाय।
यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं
शीश उतारे, भुंइ धरे तब बैठे घर माहिं।

केवल उद्‌भ्रान्त दशा ही नहीं बनी रही, जान पड़ता है कि मीरा वियोग की आँच में जल जल कर अस्वस्थ रहने लगी और पीली पड़ गई। घर वालों को यह दशा देख कर चिन्ता हुई और उन्होंने वैद्य बुला कर उपचार प्रारम्भ कर दिया, पर भला मरीज़े इश्क—प्रेम के रोगी की भी कोई दवा है ? वह स्वयं कहती है;—

पानां ज्यूँ पीली पड़ी रे, लोग कहे पिँडरोग।
छाने लाँघन मैं किया रे राम मिलण के जोग।
बावल बैद बुलाइया रे पकड़ म्हारी बाँह।
मूरख बैद मरम नहिं जाने करक कलेजे माँह॥
जाओ बैद घर आपने रे, म्हारों नाँव न लेय।
में तो दाधी विरह की रे, काहें कू औषद देय ?
मांस गलि गलि छीजिया रे, करक रह्या गल आहिं।
आकुलियाँ की मूँदड़ी, म्हारे आवण लागी बांहि ?

मीरा व्याकुल होकर, अपने हृदय की दरद को पक्षियों के सम्मुख खोल कर रखती है, वह कहती है, 'अरे पपीहे, तू 'पिव-पिव' न पुकारा कर; नहीं तो कोई वियोगिनी सुन कर प्राण तज देगी।' परन्तु भला पपीहा अपने प्यारे की याद को किसी के कहने से क्यों छोड़ दे ? इससे भी मर्मस्पर्शिणी वे पंक्तियाँ हैं जहाँ मीरा कहती है "ऐ कौवे ? मैं अपना कलेजा निकाल कर रखे देती हूँ, तू उस देश को उठा कर ले जा जहाँ मेरा हृदयेश्वर रहता है, उसके नेत्रों के सम्मुख मेरे कलेजे को खाना। शायद यह करुण दृश्य देख कर उसका कठोर हृदय कुछ पिघल उठे।"

"खिन मन्दिर खिन आँगने रे, खिन खिन ठाढ़ी होय।
घायल ज्यूँ घूमूँ खड़ी, म्हारी बिथा न बूझै कोय।

काढ़ि कलेजो मैं धरूँ रे, कौवा तू ले जाय।
ज्याँ देशा म्हारो पिव बसे रे, वे देखत तू खाय।

मीरा को पूर्ण विश्वास है कि यद्यपि मेरा प्राणेश्वर कितना भी निष्ठुर हो गया है पर उसमें यदि तनिक सहृदयता शेष रह गई होगी तो उसका हृदय इस व्यथापूर्ण एवं करुणोत्पादक दृश्य को देख कर आर्द्र हुए बिना नहीं रह सकता।

उसके प्रेम को पूर्ण रूप से समझने के लिये हम दो तीन उदाहरण और देते हैं। फिर हम उसके प्रेम के स्वरूप पर विचार करेंगे। मीरा ने अनेक पदों में अपने हृदय की सुकुमार वृत्तियों की ऐसी मधुर व्यञ्जना की है कि विषय एक होते हुये भी उसमें एक-स्वरता नहीं आने पाई है। मीरा के पदों में ऐसे पद बहुत कम हैं, जिनमें उसकी प्रतिभा प्रस्फुटित नहीं हुई हो। सूरदास के अपार सागर में रत्नों के साथ कुछ कंकड़-पत्थर भी पा सकते हैं, पर मीरा में ऐसे पद नहीं जिनमें कुछ भी सौन्दर्य न हो।

'रमैया मैं तो थारे रँगराती।
औराँ के पिय परदेश बसत हैं लिख-लिख भेजें पाती।
मेरा पिया मेरे हिरदे बसत है, गूँज करूँ दिन राती।
और सखी मद पी पी माती मैं बिन पीयाँ मदमाती।
प्रेम-मयी को मैं मद पीयो, छकी करूँ दिन-राती।
''पतियाँ मैं कैसे लिखूँ ? लिख ही न जाई।
कलम धरत मेरे कर कंपत, हृदय रहो थर्राई।
बात कहूँ, मोहिं बात न आवै नैन रहे झर्राई।
किस विधि चरण-कमल मैं गहि ते, सबहि अंग चर्राई।
'मीरा' कहे प्रभु गिरधर नागर सब ही दुख बिसराई।

मीरा के 'प्रेम' का स्वरूप

मीरा की भक्ति को 'प्रेम' ही कहना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है; क्योंकि मीरा का गिरधर गोपाल से सम्बन्ध न 'सखा-भाव' (सूरदास) और न 'दास-भाव' (तुलसीदास) का था; उसका प्रियतम और प्रेमिका का, पति और पत्नी का मनोहर सम्बन्ध था। मीरा अपने आराध्य देव को अपना प्रेमी और अपना पति समझती थी, अतः हम उसकी भक्ति को 'दाम्पत्य-भाव' की भक्ति कहें, तो भले ही कह सकते हैं। वह अपने गिरधर गोपाल को 'पिया' सैयाँ यहाँ तक कि 'भतार' भी कह उठती है—

"मात पिता तुम को दियो तुम ही भल जानी हो।
तुम तजि और 'भतार' को मन में नहिं आनी हो।"
'जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई
तात, मात, भ्रात, बन्धु अपना नहिं कोई'

अतः उसके प्रेम का स्वरूप लौकिक है; वह एक लौकिक स्त्री के समान अपने प्राणप्यारे के साथ सभी प्रकार के आनन्द लूटना चाहती है। अतः उसकी कल्पना गार्हस्थ्य जीवन के उन सुखों की ओर जाती है, जो नितान्त लौकिक है। वह भी उन्हीं की नाईं अपने जीवनधन गिरधर के साथ शारीरिक मिलन की अभिलाषिणी है, वह अपने को राधा के रूप में देखती है और उसकी इच्छा है कि मेरे साथ भी श्रीकृष्ण क्रीड़ाओं का सुख लूटें। मीरा कहती है कि "गगनमंडल में सेज पिया की किस विधि मिलणा होय।"

यह सेजिया बहु रंग की फूल बिछाये हो।
पंथ मैं जोहौं स्याम का, अजहूँ नहिं आये हो।

वह स्पष्ट शब्दों में कहती है, "मीरा दासी जनम जनम की अंग सूँ अंग लगायो।" यही कारण है कि जिस प्रकार एक प्रेमिका यह कभी भी सहन नहीं कर सकती कि उसका प्रेमी दूसरी रमणी के साथ प्रेमालाप करे, मीरा भी अपने प्राणनाथ से ऐसी ही विनती करती है।

"पिया इतनी विनती सुन मोरी, कोई कहियो हो जाय।
औरन सों रस बतियाँ करत हो हम से रहे चित चोरी।
तुम बिन मेरे और न कोई, मैं शरणागत तोरी।"

स्याम मो सूँ ऐंडो डोले हो।
औरन सूँ खेले धमार म्हाँ सूँ मुखहुँ न बोले हो।
म्हारी गलियाँ ना फिरे, वाके आँगण डोलें हो।
म्हारी अँगुली ना छुवे, वाकी बहियाँ मोरे हो।
म्हारी अँचरा ना छुवे, वा को घूँघट खोले हो।
'मीरा' को प्रभु साँवरो, रंग रसिया डोले हो।

अतएव मीरा की भक्ति का रूप लौकिक होने के कारण उसके हृदय में गिरधर से होली खेलने, उनके साथ झूला झूलने तथा क्रीड़ा करने की भावनायें उदित होती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मीरा ने भी अन्य भक्तों के समान विनय के पद लिखे हैं; पर उसकी अन्तरात्मा जितनी प्रेममय सम्बन्धों के वर्णन करने में लीन हुई है उतनी 'विनय' के पदों में नहीं। मीरा का विरह लौकिक नारी के वियोग के समान है, अतः उसमें उसी प्रकार की आकुलता, मिलनोत्सुकता, व्यथा एवं शारीरिक मिलन की अभिलाषा है।

मीरा के काव्य का प्रधान गुण मानव हृदय के प्रेमोजनित भावों का सीधे-सादे, पर चुभते हुये शब्दों में प्रकाश है। मीरा

में मनोवेगों की प्रचुरता है, और कल्पना की कमी। यदि हम मीरा के काव्य में सूर की प्रौढ़ कल्पना और रूपकों का अनोखा चमत्कार, तुलसी की सर्वतोमुखी प्रतिभा, अथवा बिहारी और केशव की कल्पना और अर्थ-गौरव खोजें तो हमें पूर्णतः निराश होना पड़ेगा। अलंकारों के प्रेमी पाठकों को कुछ पृष्ठ देख कर ही पुस्तक बन्द कर देनी पड़ेगी क्योंकि उनकी मनस्तुष्टि की सामग्री मीरा में नहीं है; पर हाँ, जिन्हें सुकुमार हृदय की प्रेममयी वृत्तियों का आनन्द लूटना हो, प्रेम के निर्मल सरोवर की तंरगों का सुख लेना हो, वे मीरा के काव्य की प्रशंसा मुक्त कंठ से किये बिना नहीं रह सकते। मीरा का काव्य सूर और विद्यापति की मुक्तक शैली पर लिखी गई है; यह कोई प्रबन्ध काव्य नहीं है जिसकी वाग्धारा निर्बन्ध रूप से बहती चली गई है।

मीरा का काव्य कवि-हृदय की कथा है; उसमें हृदय के प्रेम मय भावों के घात-प्रतिघातों का सफल चित्रण है। उसके काव्य का प्रधान गुण Subjectivity है; प्रत्येक पदों में मीरा का हृदय छिपा हुआ है। विरह और मिलन सम्बन्धी पदों में कहीं कहीं ऐसा जान पड़ता कि पदों में हृदय लिपटा हुआ रखा है। यह गुण केवल उच्चकोटि के कवियों में पाया जाता है। मीरा का काव्य अलंकार-विहीन सुन्दर काव्य का बड़ा ही उत्कृष्ट उदाहरण है। विनय के पदों में कबीर और तुलसी का अनुकरण किया गया है, और भगवान की पतित-पावनता, महिमा और भक्तवत्सलता स्थल-स्थल पर दिखाई गई है। वह कृष्ण को उनके विरद और भक्तों के उबारने की

Subjective poetry **उस कविता को कहते हैं, जिसमें कवि अपने हृदय की भावनाओं तथा मनोवेगों का प्रकाश करता है।**

प्रतिज्ञा की याद दिलाती है, तथा अपनी दीनता, असहायावस्था, भक्ति को दिखा कर उनके चरणों की प्रीति माँगती है। ऐसा जान पड़ता है कि प्रेम सम्बन्धी पद युवावस्था के उद्‌गार हैं और विनय तथा भगवान के नाम सम्बन्धी पद उस समय के हैं जब वह राजकुल छोड़ कर वृन्दावन-मथुरा में साधुओं की संगति में रहती थी। ऐसी ही अवस्था में वह मन को प्रभु के चरणों में अनुरक्त होने के लिये उपदेश देती है।

भज मन चरण कँवल अविनासी
जेताइ दीसे धरनि गगन बिच तेताइ सब उठि जासी।
कहा भयो तीरथ-व्रत कीन्हें, कहा लिये करवत कासी।
इस देही का गरब न करना माटी में मिल जासी।
यो संसार चहर की बाजी, साझ पड़्याँ उठि जासी।
कहा भयो है भगवा पहिरयाँ, घर तज भये संन्यासी।
जोगी होय जुगुति नहिं जानी उलटि जनम फिर आसी।
अरज करो अबला कर जोरे श्याम तुम्हारी दासी।
'मीरा' के प्रभु गिरधर-नागर, काटो जम की फाँसी॥

मीरा की भक्ति

कबीर के निर्गुण ब्रह्म की नीरस उपासना, जिसमें बोध-वृत्ति की प्रधानता थी, जनता के नैराश्य-पूर्ण हृदय पर अधिक प्रभाव न डाल सकी। मानव-हृदय अपने दुःखों से सहानुभूति और कष्टों से उद्धार करनेवाला भगवान का हृदयग्राही मंजुल स्वरूप देखना चाहता था। यही कारण है कि जनता वल्लभाचार्य एवं रामानन्द की सरस वाणी और मंजुल उपदेशों से आकर्षित हो, तुलसी और सूर की वेगवती वाग्धारा में बह चली। वह युग साकार उपासना का युग था, सगुण की भक्ति अधिक आकर्षक

और अल्प शिक्षितों के उपयुक्त थी। यही कारण है कि धीरे धीरे सन्त मत की शुष्कता भी हटाई जाने लगी और कबीर की निर्गुणाश्रयी ज्ञान-धारा का प्रवाह मन्द होने लगा। सगुण उपासना की दो प्रधान शाखायें थीं—रामभक्ति-शाखा और कृष्ण-भक्ति शाखा। यह स्वाभाविक ही था कि मीरा का रमणी-हृदय कृष्ण के मधुर और रसमय चरित्र की ओर विशेष आकर्षित हो। अत: मीरा ने अपनी भक्ति का आश्रय, कृष्ण का वह मधुर मनोरञ्जक रूप लिया, जिसमें बाल-लीलायें करता हुआ, मुख में दधि लपेटे हुए बाल-गोपाल मचलता फिरता था, जिसमें गोपियों के गले में बाहें डाल, रसिक शिरोमणि कन्हैया कालिन्दी के कूल और ब्रज की करील कुञ्जों में विहरता था। इस रसमय चरित्र के आगे राम का आदर्श चरित्र मीरा को फीका जान पड़ा; अतएव मीरा के अन्तस्तल की यही कामना है कि मैं भी ब्रज की गोपी, राधा की तरह गिरधर की चिर-प्रेयसी बनूँ।

मीरा पर विष्णु स्वामी तथा निंबार्क मतों का अधिक प्रभाव पड़ा था। न तो भागवत और न तो माध्व मत में ही, हम राधा को कृष्ण की चिर-प्रेयसी के रूप में देखते हैं। अन्य गोपियों के बीच राधा की यह प्रधानता, सबसे पहिले विष्णु स्वामी तथा निंबार्क सम्प्रदाय में ही मिली। अब तो इस भावना का ऐसा प्रचार है कि कृष्ण के साथ साथ राधा की भी पूजा होती है। 'सीताराम' के साथ साथ 'राधा-कृष्ण' भक्तों का कंठ-हार बना हुआ है। विष्णु स्वामी और निंबार्क मतों में राधा-कृष्ण की सम्मिलित उपासना का नियम था। मीरा कृष्ण की परम भक्त थी, पर उसने अपने आराध्य देव का विस्तृत चरित्र-वर्णन नहीं किया। थोड़े से पदों में कृष्ण की बाल छवि और उनकी भक्त-वत्सलता का वर्णन है; शेष पदों में वह किसी न किसी रूप में

अपने हृदय की भक्ति को प्रगट करती है। मीरा के सभी पद गेय हैं; मुक्तक शैली पर उसकी रचनायें हैं। अतः वह अपने हृदय के उद्गार पदों के रूप में प्रगट करती है। कवियित्री मीरा 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई, कहते हुये प्रेमातिरेक से सुध-बुध भूल जाती है। अतः हम मीरा की भक्ति को न तो सख्य-भाव और न तो दास्य-भाव की कह सकते हैं, इसके लिये यदि हम 'दाम्पत्य-भाव' की भक्ति कहें तो अधिक उपयुक्त होगा। इसका विस्तृत विवेचन हमने उसके 'प्रेम का स्वरूप' के अन्तर्गत किया है। पर इससे यह समझना उचित नहीं है कि मीरा ने अन्य भक्तों के समान अपनी दीनता और नम्रता का प्रकाश नहीं किया है। मीरा के कुछ पद गो० तुलसीदास की शैली पर लिखे गये हैं। उसमें भक्तों के अनुरूप दैन्य-निवेदन और विनय पर्याप्त रूप से हैं। यहाँ हम दो ही उदाहरण दे रहे हैं--

१

सुन लीजे बिनती मोरी, मैं सरन गही प्रभु तोरी।
तुम तो पतित अनेक उधारे, भवसागर से तारचो।
मैं सब का तो नाम न जानों, कोइ कोइ भक्त बखानों।
अम्बरीक सुदामा नामी, पहुँचाये निज धामा।
आदि--

२

म्हानें चाकर राखोजी, गिरधारी लला, चाकर राखो जी।
चाकर रहसूँ, बाग लगासूँ, नित उठ दरसन पासूँ।
वृन्दाबन की कुञ्ज-गलिन में, गोविन्द लीला गासूँ।
आदि--

अतः भक्ति के दृष्टि-कोण से हम मीरा के पदों को दो भाग में बाँट सकते हैं। एक तो दाम्पत्य-भाव की रचनायें हैं, दूसरी तुलसी

की शैली पर लिखी हुई दास-भाव की रचनायें। प्रथम प्रकार के पदों में मीरा का हृदय अधिक लीन है, यद्यपि दूसरी श्रेणी की रचनायें भी निम्न कोटि की नहीं कही जा सकतीं। जान पड़ता है कि वैधव्य का असह्य दुःख पड़ने पर अपने हृदय को संसार से सदा के लिये अलग रखने के निमित्त मीरा ने अपने जीवन को कृष्ण के चरणों पर पूर्णतः समर्पित कर दिया। अशरण शरण भगवान के चरणों की छाया को छोड़ आर्त मानव को कहाँ सान्त्वना मिल सकती है ? यदि हमें मीरा पर कबीर और तुलसी ऐसे अप्रतिम प्रतिभा के महात्माओं का प्रभाव दिखाई पड़े तो यह नितान्त स्वाभाविक है। संतों के बीच रह कर, वृन्दावन आदि स्थानों में निवास करने पर भी यदि मीरा तुलसी, सूर और कबीर ऐसी महान आत्माओं के पुनीत प्रभाव से सर्वथा वञ्चित रहती तो यह हमारे आश्चर्य का कारण हो सकता था ? मीरा ने अपनी भक्ति के कारण भक्तों के बीच उच्च आसन पाया और हम काव्य की दृष्टि से भी महिला-कवियों में सर्वोच्च आसन की अधिकारिणी मीरा को मानते हैं।

मीराबाई तथा अन्य महिला कवि

कवियों के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन करने से उनके साम्य तथा वैषम्य का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। साहित्यिक जौहरी के सम्मुख लगभग एक-से अनेक उज्ज्वल रत्न रखे जाने पर, उनके गुणों की छानबीन करने में उसे अनोखा आनन्द प्राप्त होता है। दो भिन्न भिन्न कवियों की रचनायें केवल भावों या विचारों का साम्य या वैषम्य ही नहीं दिखाई पड़ता है, वरन् प्रायः उनकी रचना-पद्धति और शैली में बड़ा मौलिक अन्तर रहता है। इस कारण तुलना का कार्य सुगम नहीं है।

हिन्दी-साहित्य के सभी कालों में महिला-कवियों ने पुरुष-कवियों की शैली का अनुकरण किया है। शेख और प्रवीणराय को छोड़ कर पूर्वकाल की सभी महिलायें काव्य के विषय की दृष्टि से भक्त-कवियों की श्रेणी में रखी जा सकती हैं। पर हम इन कवियित्रियों को सूरदास, नन्ददास या गोस्वामी तुलसीदास से तुलना के लिये खड़ा करें तो निस्सन्देह सूर्य को दीपक दिखाने की लोकोक्ति चरितार्थ होगी। उन हीरकोज्ज्वल काव्यों के सम्मुख महिला-कवियों की रचनायें साधारण मोतियों सी फीकी जान पड़ेंगी। पर साहित्य के उपरोक्त महारथियों से इन अबला कवियों की तुलना करना निस्सन्देह अनुचित और अनुपयुक्त जान पड़ता है। क्योंकि सामाजिक नियमों से जकड़ी होने के कारण एवं साहित्य के अध्ययन के उत्कृष्ट साधनों से वंचित रहने के कारण वे साहित्यिक स्पर्धा में पुरुषों की बराबरी नहीं कर सकीं। अतएव पुरुष कवियों के साथ असंगत तुलना न कर हम अब महिला कवियों की तुलनात्मक समीक्षा की ओर अग्रसर होते हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन से हमें यह देख कर महान् आश्चर्य होता है कि सर्व प्रथम कवियों की जोड़ के कवि फिर उत्पन्न नहीं हुये। ब्रजभाषा काव्य के पिता सूरदास का स्थान कौन परवर्ती कवि ग्रहण कर सकता है? सूर-सागर कृष्ण विषयक काव्य का ऐसा विस्तृत भण्डार है कि कृष्ण विषयक सभी कवियों के लगभग सारे भाव उस अन्धे कवि के अक्षय-सौन्दर्य-संयुक्त 'सागर' में वर्तमान हैं। अवधी को ही लीजिये—तुलसी और जायसी का उच्चासन कोई परवर्ती कवि डिगाने का साहस नहीं कर सकता। यही बात महिला-कवियों के सम्बन्ध में भी दृष्टिगोचर होती है। मीराबाई हिन्दी की सर्व

प्रथम महिला-कवि है, और आज लगभग चार सौ वर्ष बीतने पर भी स्त्री-कवियों में सर्वोच्च आसन की अधिकारिणी है।

मीरा की रचनायें सूर और नन्ददास की पद-शैली पर हैं और विषय की भी एकता है। अतः मीरा की तुलना उन पुरुष-कवियों से की जा सकती है; पर जैसा ऊपर कहा गया है वह उन महाकवियों की तुलना में नहीं ठहर सकती। स्त्री-कवियों में रसिकविहारी (महाराज नागरीदास की दासी), सुन्दरिकुँवर बाई (कविताकाल सं० १८३०) तथा प्रताप बाला आदि कवियित्रियों से मीरा की तुलना की जा सकती है। ये सब कृष्ण की भक्त थीं और सबने अपनी रचनाओं में अपने आराध्य देव के प्रति हार्दिक प्रेम को प्रगट किया है। किन्तु मीरा-सी तल्लीनता किसी में नहीं पाई जाती। न तो मीरा की भाषा की माधुरी और न भावों की सुकुमारता का वह अनूठा दृश्य इन कवियित्रियों की रचना में दिखाई देता है। रसिकविहारी की कविता पर मीरा की स्पष्ट छाप है और हमें कहीं कहीं वैसी ही माधुरी का दर्शन होता है। रसिकविहारी के निम्न-पदों में मीरा की कविता का आभास होने लगता है—

कुंज पधारो रँग-भरी रैन।
रँग भरी दुलहिन, रँग भरे पीया श्यामसुन्दर सुख दैन॥
रँग भरी सेज रची जहाँ सुन्दर रँग भरो उलहत मैन।
'रसिकविहारी' प्यारी मिलि दोउ करो रँग सुख-चैन॥

कैसे जल लाऊँ मैं पनघट जाऊँ।
होरी खेलत नन्द-लाड़िलो क्योंकर निबहन पाऊँ॥
वे तो निलज फाग मदमाते हौं कुलवधू कहाऊँ।
जो छुवे अंचल 'रसिकविहारी' धरती फ़ार समाऊँ॥

इसी प्रकार सुन्दरिकुँवर बाई का निम्न पद भी सरस और सुन्दर है—

मेरी प्रान-सँजीवन राधा।
कब तौ वदन सुधाधर दरसै यों अँखियन हरौ बाधा॥
ठुमकि ठुमकि लरकौहीं-चालत आव सामुहे मेरे।
रस के वचन पियूष पोष के कर गहु बैठहु मेरे॥
रहसि रंग की भरी उमंगनि ले चल संग लगाय।
निभृत नवल निकुंज विनोदन विलसत सुख दरसाय॥
रंगमहल संकेत सुगल कै टहलनि करतु सहेली।
आज्ञा लहौं रहौं तट पर बोलत प्रेम-पहेली॥
मन मंजरी जु कीन्हों किंकरि अपनावहु किन बेग।
सुन्दरिकुँवरि स्वामिनी राधा हिय की हरो उदेग॥

इस प्रकार उपरोक्त कवियों की कविताओं में यत्र-तत्र सौन्दर्य मिल सकता है; पर समष्टि रूप से, मीरा के समकक्ष ये ठहर नहीं सकतीं। मीरा की सजीव एवं मर्मस्पर्शिणी शैली बड़ी ललित और आह्लादकारिणी है।

दूसरी श्रेणी में सहजोबाई और दयाबाई प्रधान हैं। सहजोबाई महात्मा चरनदास की शिष्या थीं और दयाबाई उनकी गुरुबहन थीं। इन दोनों रमणियों पर महात्मा चरनदास के सत्संग के कारण संत-धारा का प्रभाव अधिक पड़ा। दया और सहजोबाई की कविता में मनोवेग और कल्पना (जो कविता के मूल तत्व हैं) का अभाव है। उनमें हृदय-पक्ष का अभाव होने के कारण मीरा की कविता-सी सरसता नहीं पाई जाती। वे हमारे सम्मुख धार्मिक उपदेशक के रूप में आती हैं। इन दोनों ने संत-मत की परम्परा से सम्बद्ध विषयों—जैसे गुरुभक्ति, संसार की असारता, भगवद्भक्ति आदि पर विशेष ज़ोर दिया है। पर इनमें

हृदय-पक्ष का तुलनात्मक रूप से अभाव होने के कारण, मीरा की बराबरी कदापि नहीं कर सकतीं। ब्रजभाषा के अन्य महिला-कवियों के काव्य में भाव या भाषा की दृष्टि से ऐसी प्रौढ़ता एवं परिपक्वता नहीं है कि उनकी तुलना मीरा से की जा सके।

वर्तमानकालीन महिला-कवियों में श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान और श्रीमती महादेवी वर्मा बी० ए० प्रमुख हैं। दोनों अपने-अपने काव्य-रत्नों से मातृभाषा का भाण्डार भर रही हैं; अतः हम अभी निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि इनके प्रदत्त काव्य-रत्नों की प्रभा कैसी होगी। तो भी प्रस्तुत रचनाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि सुभद्राकुमारी जी होनहार कवि हैं, इन्होंने सच्चा कवि-हृदय पाया है और कुछ कविताओं में हार्दिक तल्लीनता की ऐसी मनोहारिणी छटा है जो पाठकों को अपनी ओर बरबस खींचे लेती है। "चलते समय", "फूल के प्रति", "ठुकरा दो या प्यार करो" आदि कवितायें सत्काव्य का उत्कृष्ट एवं मर्मस्पर्शी उदाहरण हैं। मीरा के पश्चात् हम सुभद्राकुमारी जी की कविताओं में मानव हृदय की कोमल प्रेममय भावुकता का सुन्दर समावेश पाते हैं। इनकी राष्ट्रीय रचनायें भी मौलिक भावों से ओत-प्रोत हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा में मनोवेग का स्थान कम और कल्पना का अंश अधिक है। किन्तु इनकी कल्पनायें कहीं-कहीं अस्पष्ट, असम्बद्ध और असंगत हो गई हैं, जिससे भावों का मर्म समझने का अधिक परिश्रम करने पर भी पाठक को उसकी स्पष्ट 'छाया' भी हाथ नहीं लगती। भाषा में कोमलता और प्रौढ़ता अवश्य है, पर अस्पष्टता का दोष अक्षम्य है।

"इन हीरक से प्यालों का, कर चूर बनाया प्याला।
पीड़ा का सार मिला कर, प्राणों का आसव ढाला॥

'स्वप्न'

वेदना की वीणा पर देव, शून्य गाता हो नीरव राग।
मिलाकर निश्वासों के तार, गूँथती हो जब तारे रात॥
इन्हीं तारक फूलों में देव ! गूँथना मेरे पागल प्राण।

अतः ऐसी असंयत एवं अस्पष्ट कल्पना वाली कविता से मीरा की तुलना असम्भव है। एक शुद्ध प्रेम के संसार में विचरती है तो दूसरी स्वप्न के लोक में पीड़ा और वेदना की सम्पत्ति लेकर निवास करती है।

स्त्री-कवियों के काव्य की इस संक्षिप्त समीक्षा से यह स्पष्ट हो जावेगा कि मीराबाई के काव्य की क्या विशेषता है और उसका आसन महिला कवियों में क्यों सर्वोपरि है।

४ मीरा और कबीर

कबीर का प्रभाव अन्य सन्तों की तुलना में सबसे अधिक पड़ा है; उनके साखी और शब्दों ने जनता के हृदय में घर बना लिया है और उनका यश भी और सन्तों से अधिक है। मीरा के अनेक पदों पर कबीर की स्पष्ट छाया है, कहीं-कहीं तो कबीर के कुछ पद बहुत थोड़े परिवर्तनों के साथ मीरा में पाये जाते हैं। कबीर मीरा से पूर्ववर्ती कवि हैं; अतः हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मीरा ऐसे पदों की लेखिका नहीं है, और बाद के मीरा के प्रेमियों ने मीरा की रचना में सम्मिलित कर लिया। उन पदों को भ्रमवश मीरा का समझ कर ऐसा जान पड़ता है कि कबीर के ये पद मीरा को बहुत पसन्द थे और वह भक्ति के आवेश में उन्हें गाया करती थी, लोगों ने अज्ञान के कारण उन पदों को मीरा का रचा हुआ समझ लिया। मीरा के गुरु रैदास थे, इसमें अब किसी प्रकार का मतभेद नहीं, क्योंकि अनेक स्थलों पर मीरा ने रैदास को स्पष्ट रूप से गुरु कहा है। रैदास कबीर

के शब्दों और साखियों से अवश्य भली भाँति परिचित होंगे, और उनके द्वारा मीरा भी कबीर की शिक्षाओं से परिचित हो गई होगी। यह भी सम्भव है कि सन्तों की मण्डली में सदा रहते-रहते, ज्ञान-चर्चा से प्रेम होने के कारण स्वयं मीरा ने उन पदों को सुना हो।

उपर्युक्त कारणों से हम मीरा के ऐसे पदों को सन्दिग्ध मानते हैं, क्योंकि इन पदों के लेखक कबीर भी माने जाते हैं—

कबीर—

मिलना कठिन है कैसे मिलूँगी पिय जाय।
समुझि सोच पग धरौं जतन से बार-बार डिग जाय॥
ऊँची गैल राह रपटीली पाँव नहीं ठहराय।
लोक-लाज कुल की मरजादा देखत मन सकुचाय॥
नैहर बास बसा पीहर में लाज तजी नहिं जाय।
अधर भूमि जहँ महल पिया का हम पै चढ़ो न जाय॥
धन भई बारी पुरुख भये भोला सुरत झकोरा खाय।
दूती सतगुरु मिले बीच में दीन्हों भेद बताय॥
साहब कबिरा पिया सों भेंट्यो सीतल कण्ठ लगाय।

मीरा—

गली तो चारों बन्द हुई मैं हरि से मिलूँ कैसे जाय?
ऊँची-नीची राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।
सोच सोच पग धरूँ जतन से, बार बार डिग जाय॥
ऊँचा नीचा महल पिया का हमसे चढ़्यो न जाय।
पिया दूर, पंथ म्हारा झीना, सुरत झकोला खाय॥
... ...
... ...

मीरा के प्रभु गिरधर नागर सतगुरु दई बताय।
जुगन जुगन से बिछुड़ी मीरा, घर में लीन्हा आय॥

भाव साम्य—

कबीर—मिलना कठिन है, कैसे मिलौगीं पिय जाय।
मीरा—गली तो चारों ओर बन्द हुई मैं हरि से मिलूँ कैसे जाय
(इसलिये मिलना कठिन है]
कबीर—ऊँची गैल राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।
मीरा—ऊँची-नीची राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय॥
कबीर—समुझि सोच पग धरौं जतन से, बार-बार डिग जाय।
मीरा—सोच सोच पग धरूँ जतन से, बार-बार डिग जाय॥
कबीर—अधर भूमि जहँ महल पिया का हम पै चढ़ौ न जाय।
मीरा—ऊँचा-नीचा महल पिया का हम से चढ़ा न जाय॥
कबीर—धन भई बारी पुरुख भये भोला, **सुरत झकोरा खाय**।
मीरा—पिया दूर पंथ म्हारा झीना, **सुरत झकोला खाय**।
कबीर—दूती **सतगुरु** मिले बीच में **दीन्हों भेद** बताय।
मीरा—मीरा के प्रभु गिरधर नागर–**सतगुरु** दई **बताय**।
कबीर—साहब कबिरा पिय सो भेंट्यो सीतल कण्ठ लगाय।
मीरा—जुगन जुगन से बिछड़ी मीरा, घर में लीन्हा आय।

हम इस स्थान पर इस प्रकार का एक ही उदाहरण दे रहे हैं, यदि हम कबीर की रचना और मीरा के पदों में भाव-साम्य ढूँढ़े तो हमें स्थान स्थान पर सामग्री मिल सकती है, किन्तु इस कारण हम मीरा पर भावापहरण का दोष नहीं लगा सकते। इसके दो कारण हैं, पहिले तो अभी तक विद्वानों द्वारा यह निश्चय नहीं हो सका है कि कबीर के नाम से प्रचलित ग्रन्थों में, कितना अंश महात्मा कबीर द्वारा रचित है और कितना अंश उसमें प्रक्षिप्त है।

कबीर की रचना में उनकी गद्दी के अधिकारी अन्यान्य सन्तों की रचनायें भी सम्मिलत हो गई हैं जिनके कारण कबीर की विशुद्ध रचनाओं का निर्णय करना बहुत कठिन हो गया है। अतः यदि हम मीरा पर भावापहरण का दोष लगावें तो कदापि उचित नहीं होगा। दूसरा प्रधान कारण यह है कि जिन भावों को हम कबीर और मीरा दोनों की रचनाओं में पाते हैं, वे केवल इन्हीं दोनों कवियों में नहीं पाये जाते, पर वे संत-मत की विशेषताएँ हैं। आप चाहे किसी भी सन्त की बानी का अध्ययन कीजिये, आपको वैसे विचार मिलेंगे। मीरा, सहजोबाई, दयाबाई से लेकर चरनदास, मलूकदास, कबीर, तुलसी साहब आदि अन्य लेखकों के ग्रन्थों में उसी प्रकार के भाव, जैसे गुरु-महिमा, नाम-महिमा, सत्संग महिमा, भवसागर के दुःख और भक्त-संकीर्तन सम्बन्धी पदों के भावों में बहुत एकता है। अतः हम 'भक्ति पीयूष' शीर्षक पदों के भाव कबीर ही क्या अन्य सन्तों में पावेंगे। जहाँ जहाँ मीरा और कबीर में प्रत्यक्ष भाव-साम्य है, पाद-टिप्पणियों में उल्लेख कर दिया गया है।

मीराबाई की भाषा

मीरा का जन्म मारवाड़ में हुआ था। यही इनकी मातृभाषा थी। अतः उनकी भाषा का स्वरूप मुख्यतः राजस्थानी होना स्वाभाविक है। परन्तु मीरा के पदों का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि मीरा के अनेक पद शुद्ध ब्रजभाषा, कुछ राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा, शुद्ध राजस्थानी और खड़ीबोली तथा पूरबी में भी पाये जाते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि जब तक मीरा मेवाड़ में रही, उसके हृदयोद्गार राजस्थानी और ब्रज से मिश्रित राजस्थानी के रूप में निकलते होंगे। राजस्थानी उसकी मातृभाषा थी अतः

उसकी तत्कालीन रचना में राजस्थानी रूपों की ओर झुकाव होना नितान्त स्वाभाविक है। पर वृन्दावन की मधुर बोली उस समय सूरदास तथा अन्य अष्टछाप के कवियों द्वारा काव्यभाषा के सिंहासन पर दृढ़ रूप से आसीन हो गई थी। और कृष्ण-काव्य की भाषा ब्रज-बोली ही उपयुक्त भी थी, अतः हम मीरा के अनेक पदों में शुद्ध ब्रज-भाषा की छटा पाते हैं। मीरा अपने श्वसुर और सास के कष्टों से पीड़ित होकर, तथा वृन्दावन के दर्शन की उत्कट लालसा से प्रेरित होकर, ब्रज-भूमि की निवासिनी हो गई। ब्रज-भाषा के प्रभाव से उस वृन्दावन में कौन बच सकता था जहाँ निशि-दिन गोपाल कृष्ण का सुखद चरित भक्तों द्वारा गाया जाता है। इससे हमारा अनुमान है कि जिन पदों की भाषा ब्रजभाषा है, वे वृन्दावन आने के बाद लिखे गये होंगे। साधुओं की संगत में जीवन व्यतीत करने के कारण वह खड़ी बोली और पूरबी (भोजपुरी) रूपों से भी परिचित हो गई। कबीर की रचना में खड़ी बोली और पूरबी के पर्याप्त उदाहरण हैं।

मीरा की भाषा में हम अधिकांश स्थलों में 'ण' का प्रयोग 'न' की जगह पाते हैं। यह राजस्थानी भाषा की एक प्रधान विशेषता है कि 'न' की जगह 'ण' का प्रयोग होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या 'ण' का प्रयोग सब स्थलों पर समुचित है?

बेलवेडियर प्रेस की प्रति में 'ण' का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है। मीरा की रचनाओं का सब से अधिक प्रचार मारवाड़ में है, और उनकी रचना गीत-काव्य के रूप में हैं। अतः यह जानने में कठिनता है कि मीरा ने किस रूप में पदों को लिखा था। जो रचनायें बहुत काल तक मौखिक रूप से प्रचलित रहती हैं, उनकी भाषा में परिवर्तन हुआ करते हैं। 'रासो' और

'आल्हा' इसके अच्छे उदाहरण हैं। हमारा तो अनुमान है कि वृन्दाबन में रहने के बाद मीरा ब्रजभाषा में पदों की रचना करती थीं और ऐसे पदों में उन्होंने 'ण' न लिख कर 'न' ही लिखा होगा, क्योंकि 'ण' से 'न' हिन्दी की आत्मा के अधिक निकट है। अतः इस संग्रह में जिन पदों की भाषा राजस्थानी नहीं हैं, अर्थात् जिनमें क्रियाओं और कारकों के रूप ब्रज-भाषा के अनुसार हैं, वहाँ 'ण' की जगह 'न' ही रखा गया है। जहाँ की भाषा राजस्थानी है वहाँ 'ण ही रखा गया है। यही कारण है कि वेलवेडियर प्रेस की तरह 'जिण चरण प्रह्लाद परसे इन्द्र पदवी धरण, जिण चरण ध्रुव अटल कीणे,राखि अपणी सरण' न लिख कर 'जिन चरन प्रह्लाद परसे इन्द्र पदवी धरण जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हे राखि अपनी सरण' पाठ अधिक उपयुक्त माना गया है।* अतः जहाँ ब्रजभाषा के व्याकरण की प्रधानता है, वहाँ 'न' ही का प्रयोग अच्छा है।

अब हम मीरा के प्रयुक्त भिन्न-भिन्न बोलियों में लिखित पदों का उदाहरण नीचे देते हैं।

ब्रजभाषा—

१—छाड़ो लंगर, मोरी बहियाँ गहो ना।
मैं तो नारि पराये घर की, मेरे भरोसे गुपाल रहोना।
जो तुम मोरी बहियाँ गहत हो,नयन जोर मेरे प्राण हरोना।
वृन्दाबन की कुंज गली में, रीत छोड़ अनरीत करो ना।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित टारे टारो ना।
२—बरसे बदरिया सावन की।

*जान पड़ता है कि ला० सीताराम के सेलेक्सन्स में भी प्रथा का अनुसरण किया गया है।

३—सखी री, लाज बैरन भई।

४—आली, साँवरो की दृष्टि मानो प्रेम की कटारी है।

५—बसो मेरे नैनन में नँदलाल।

६—आली रे मेरे नैनन बान पड़ी।

खड़ीबोली—

मीरा को प्रभु साँची दासी बनाओ
झूठे धंधों से मेरा फंदा छुड़ाओ।
लूटे ही लेत विवेक का डेरा।
बुधि-बल यदपि करूँ बहुतेरा।
सदा साधु-सेवा करती हूँ।
सुमिरण ध्यान में चित धरती हूँ।
भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ।
मीरा को प्रभु साँची दासी बनाओ।

(२) रघुनन्दन आगे नाचूँगी।
नाच नाच रघुनाथ रिझाऊँ, प्रेमी जन को जाचूँगी।
आदि—

राजस्थानी—

मीराबाई और कुटुम्बियों के परस्पर वार्तालाप सम्बन्धी पद मुख्यतः इसी भाषा में लिखे गये हैं।

(१) अब मीरा मान लीज्यो हारी।
हाँजी, थाँने मइयाँ बरजे सारी।

(२) इन सखरिया पाल मीराबाई सांपड़े।
सांपड़ किया अस्नान, सुरज स्वामी जय करे।

(३) माई म्हानें सुपने में परण राया जगरीत।
सोती को सुपना आखिया जी, सुपना बिस्वाबीस।

पूरब

मैं तो लागि रहों नँदलाल से ।
हमरे बाटहिं दूजन पार
(१) लाल लाल पगिया झिन झिन बार
सांकर खटुलना दुइ जन बीच
मन कइले बरषा तन कइले कीच ।
कहाँ गइलें बछरू कँह गइलीं गाय ।
कँह गइलें धेनु चरावन राय ।
आदि

(२) हमरे रौरे लागलि कैसे छूटै ?
आदि

अतः कुछ विद्वानों की यह धारणा कि जिन पदों में ब्रजभाषा का प्रयोग है, वे मीरा द्वारा रचित न होकर क्षेपक हैं, अधिक सार-मूलक नहीं जान पड़ता। मीरा के लिये वृन्दावन में बास करने पर भी ब्रजभाषा से अपरचित रहना अवश्य आश्चर्य का कारण हो सकता है। जब तक यथेष्ट और दृढ़ प्रमाण नहीं पाये जाते हैं कि मीरा के ऐसे पद दूसरे लोगों की रचना है, तब तक ये पद मीरा ही द्वारा रचित मानना चाहिये। समस्त रचना में एक ही प्रकार की शैली, विचार-पद्धति, भावना का प्रसार इस बात का सूचक है कि इनका रचयिता एक ही व्यक्ति है।

भाषा पर हम दूसरी दृष्टि से भी विचार कर सकते हैं। क्या कवि द्वारा प्रयुक्त भाषा भावों के अनुकूल है ? क्या उसमें कविता के उपयुक्त अबाध गति वर्तमान है ? मीरा की कविता का विषय कृष्णोन्मुख प्रेम है। ऐसे विषय के वर्णन में भाषा सरल, चुभती हुई और प्रसाद-गुण से पूर्ण होनी चाहिये। मीरा की भाषा में

ये सभी गुण पूर्णतः वर्तमान हैं। उपनागरिका वृत्ति और प्रसाद-गुण का अनोखा बहार है। भाषा में दुरूहता कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती है। थोड़े में हम यों कह सकते हैं कि मीरा के काव्य की भाषा सरल और मधुर है।



विषय-सूची

विषय			पृष्ठ
१—भक्ति पीयूष	...	...	१
२—प्रियतम के चरणों में	...	...	३५
३—स्वजीवन-सम्बन्धी	...	...	६७
४—होली और सावन	...	...	७७
५—परिशिष्ट	...	...	
(क) अन्तर्कथायें	...	...	८५
(ख) प्रियादास जी का लिखा हुआ मीराबाई का चरित			९५

नाम-महिमा

मेरे मन राम नाम बसी।
तेरे कारण स्याम सुन्दर सकल लोगाँ हँसी[1]।
कोई कहे मीरा भई बौरी, कोई कहे कुल-नसी ॥
कोई कहे मीरा दीप आगरी[2], नाम पिया सूँ रसी।
खाँड धार भक्ती की न्यारी, काटि है जम फँसी[3] ॥
"मीरा" के प्रभु गिरधर नागर सब्द सरोवर धसी।

२

पिया तेरे नाम लुभाणी हो।
नाम लेत तिरता सुण्या, जैसे पाहण पाणी हो ॥
सुकिरत कोई ना कियो, बहु करम कुमाणी हो।
गणिका कीर पढ़ावताँ, बैकुन्ठ बसाणी हो ॥
अरध नाम कुञ्जर लियो, वाकी अवध छतानी हो।
गरुड़ छांड़ि हरि धाइया, पसु जूण[4] घटानी हो ॥

१—मीरा यद्यपि गोपाल कृष्ण की उपासिका है किन्तु वह राम नाम की प्रेमी है। जपने के लिये वह 'राम' नाम की ही महिमा मानती है। वास्तव में वह राम और कृष्ण में कुछ भी भेद नहीं जानती।

२—कोई मीरा को घरका दीपक कहते हैं।

३—भक्ति पथ खड्ग की धार है और वह इसी खड्ग से जम की फांसी काटेगी।

४—योनि—इन पौराणिक कथाओं से प्रत्येक आस्तिक हिन्दू परिचित है अतः इनकी कथा अलग अलग लिखना अनावश्यक है।

अजामेल से ऊधरे, जम-त्रास नसानी हो ।
पुत्र हेतु पदवी दई, जग सारे जाणी हो ॥
नाम महातम गुरु दियो, परतीत पिछाणी हो ।
'मीरा' दासी रावली, अपणी कर जाणी हो ॥

३

मेरो मन रामहि राम रटै रे ।
राम नाम जप लीजे प्राणी, कोटिक पाप कटै रे ॥
जनम जनम के खत जु पुराने, नामहिं लेत फटे रे ।
कनक कटोरे इमृत भरियो, पीवत कौन नटे[1] रे ।
'मीरा' कहे प्रभु हरि अविनासी, तनयन ताहि पटे रे ॥

४

मेरो तो एक राम नाम दूसरा न कोई ।[2]
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई ॥[3]
भाई छोड़या, बन्धु छोड़या, छोड़या सगा सोई ।
साध सङ्ग बैठ बैठ लोक लाज खोई ॥
भगत देख राजी भई, जगत देख रोई ।[4]
प्रेम नीर सींच सींच विष बेल धोई ॥

१—रुकेगा, नहीं करेगा ।

२—'मेरे तो गिरधर गुपाल दूसरा न कोई' और इस पद में बहुत साम्य है । जान पड़ता है यह पद उसी के आधार पर लिखा गया है ।

३—जोई—खोज चुकी ।

४—भगवान के भक्तों को देख कर मैं उनका पथ ग्रहण करने को राजी हो गई, और संसार की व्यथा-पूर्ण अवस्था देख कर मुझे रुलाई आई अर्थात् मेरा हृदय क्षुब्ध हो उठा ।

दधि मथ घृत काढ़ लियो डार दियो छोई।[1]
राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई॥
अब तो बात फैल पड़ी जाने सब कोई।
'मीरा' राम लगण लगी होनी होय सो होई॥

५

अब नहिं बिसरूँ, म्हांरे हिरदे लिख्यो हरिनाम।
म्हांरे सतगुरु दियो बताय, अब नहिं बिसरूँ रे॥
मीरा बैठी महल में रे, ऊठत बैठत राम।
सेवा करस्याँ साध की, म्हांरे और न दूजो काम॥
राणो जी बतलाइया[2] कइ देणो जवाब।
प्रण लागो हरि नाम सूँ, म्हाँरो दित दिन दूनो लाभ॥[3]
सीप भरयो पानी पीवे रे, टांक[4] भरयो अन खाय।
बतलायाँ बोली नहीं रे राणो जी गया रिसाय॥
विष का प्याला राणा जी भेज्या, दीज्यो मेड़तणी[5] के हाथ।
कर चरणामृत पी गई, म्हाँरा सबल धणी का साथ॥
विष को प्यालो पी गई, भजन करे उस ठौर।
थाँरी मारूँ न मरूँ, म्हाँरी राखणहारो[6] और॥

१—दही मथने पर घी निकल जाने पर जो शेष रह जाता है।

२—बतलाइया—पूछा।

३—मैने भगवान के नाम से बाज़ी लगाई है और मुझे दिनों दिन दूना लभा हो रहा है।

४—टांक—एक टांक, चार माशा।

५—मीरा को मेड़तणी कहते हैं क्योंकि वह मेड़ते में रहती थी।

६—रक्षक।

राणा जी मो पर कोप्यो रे, मारूँ एक न सेल ।[1]
मार्‌याँ पराछित लागसी, याँ ने दीजो पीहर[2] मेल ।।[3]
राणो मो पर कोप्यो रे रती न राख्यो मोद ।[4]
जे जाती बैकुंठ में, यो तो समझ्यो नहीं सिसोद ।।[5]
छापा तिलक बनाइया, तजिया सब सिंगार ।
मैं तो सरने राम के, भल निन्दो संसार ।।
माला म्हाँ रे देवड़ी, सील बरत सिंगार ।
अब के किरपा कीजियो, हू तो फिर बांधू तलवार ।।
रथाँ बैल जुताय के, ऊँटाँ कसियो भार ।
कैसे तोड़ू राम सूँ, म्हाँरो भो भो रो भरतार ।।
राणो साँड्‌यो[6] मोकल्यो[7] जाज्यो एके दौड़ ।
कुल की तारण अस्तरी या तो मुरड़ चली राठौड़ ।।[8]
साँड्यो पाछो फेर्‌यो रे, परत न देस्याँ पाँव ।
कर सूरा पण नीसरी[9], म्हारे कुण राणे कुण राव ।।
संसारी निन्दा करे रे, दुखियो सब परिवार ।
कुल सारो ही लाज सी, मीरा थे जो भया जी ख्वार ।।[10]

१—बरछी । २—नैहर । ३—भेजना ।

४—हृदय में राणा के जरा भी हर्ष न था अर्थात् वह क्रोध से पूर्ण था । ५—सीसोदिया राणा । ६—संदेशा ।

७—गौने के बाद बधूका दूसरी बार आना जिसे दोंगा कहते हैं । राणा ने दोंगा का संदेशा भेजा कि एक आदमी दौड़ कर (शीघ्र) मीरा के पीहर चले जाओ ।

८—कुल को तारने वाली स्त्री रूठ कर चली गई । ९—वीरों की तरह प्रण कर के निकली हूँ, फिर कभी पांव न रखूँगा । १०—खराब ।

राती माती प्रेम की, विष भगत को मोड़ ।
राम अमल[1] माती रहे, धन मीरा राठोड़ ॥

रामनाम मेरे मन बसियो, रसियो राम रिझाऊँ, ए माय ।
मैं मँद भागिन, करम अभागिन, कीरत कैसे गाऊँ, ए माय ॥
विरह पिंजर की बाड़[2] सखीरी, उठ कर जी हुलसाऊँ, ए माय ।
मन कूँ मार[3] सजूँ[4] सतगुरु सूँ दुरमत दूर गसाऊँ, ए माय ॥
वाको[5] नाम सुरत की डोरी, डाको[6] प्रेम चढ़ाऊँ, ए माय ।
ज्ञान को ढोल बन्यो अति भारी, मगन होय गुण गाऊँ, एमाय ॥
तन करूँ ताल, मन करूँ मोर चंग[7], सोती सुरत जगाऊँ, ए माय ।
निरत करूँ मैं प्रीतम आगे, तौ अमरापुर[8] पाऊँ, ए माय ॥
यो अबला पर किरपा कीज्यो, गुण गोबिन्द के गाऊँ, ए माय ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, रज चरणां की पाऊँ, ए माये ॥

१—नशा । २—घेरा, बाड़ा । ३—मन की प्रवृत्तियों पर संयमकर ।
४—सतगुरु से मिलने की तैयारी करूँ । ५—डंका, ।
६—कड़ियां जिनसे डंके की डोरी को खींचते हैं ।
७—मोरचंग—सितार की तरह का एक बाजा ।
८—स्वर्ग, परम लोक ।

भक्ति

१

म्हाने[1] चाकर[2] राखोजी, गिरधारीलला, चाकर राखो जी ।
चाकर रहसूँ,[3] बाग लगासूँ,[4] नित उठ दरसन पासूँ ॥
वृन्दाबन की कुंज गलिन में, गोबिन्द लीला गासूँ ।
चाकरी में दरसन पाऊँ, सुमिरन पाँऊ खरची ॥
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बातां सरसी ।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल बैजन्ती माला ॥
वृन्दाबन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला ।
ऊँचे ऊँचे महल बनाऊँ, बिच बिच राखूँ बारी ॥[5]
सांवरिया के दरसन पाऊँ पहिर कुसुम्भी सारी ।
जोगी आया जोग करन कूँ, तप करने सन्यासी ॥
हरी भजन कूँ साधू आये, वृन्दाबन के बासी ।
'मीरा' के प्रभु गहिर गम्भीरा, हृदे रहो जी धीरा ॥
आधी रात प्रभु दरसन दीन्हो प्रेम नदी के तीरा ❀।

२

राणाजी, मैं साँवरे रङ्ग राची ।
साज सिंगार बाँध पग घुंघरू, लोक-लाज तज, नाची ॥

१—मुझे । २—नौकर । ३—रहूँगी । ४—लगाऊंगी ।
५—खिड़की ।

❀ 'जमुना जी के तीरा' भी पाठ मिलता है—किन्तु प्रेम नदी के तट का भाव अधिक सुन्दर है ।

गई कुमति, लई साध की संगत भगत रूप भई सांची ।
गाय गाय हरि के गुन निसि दिन काल-व्याल[1] सों बांची ॥
उन बिन सब जग खारो लागत, और बात सबु काची ।
'मीरा' श्रीगिरधरनलाल सों, भगति रसाली[2] याची ॥[3]

३

राणाजी मैं तो गोबिन्द का गुण गास्याँ ।[4]
चरणामृत का नेम हमारे नित उठि दरसन जास्याँ ॥
हरि मन्दिर में निरत करास्याँ, घूँघरियाँ घमकास्यां ।
राम नाम का जहाज चलास्यां, भवसागर तर जास्याँ ॥
यह संसार बाड़[5] का कांटा, ज्यां संगत नहिं जास्याँ ।
'मीरा' कहे प्रभु गिरधर नागर, निरख परख गुण गास्याँ ॥

४

मेरो मन हरि सूँ जोर्‌यो, हरि सूँ जोर सकल सूँ तोर्‌यो ।
मेरी प्रीत निरन्तर हरि सूँ ज्यों खेलत बाजीगर गोर्‌यो ॥[6]
जब मैं चली साध के दरसन, तब राणो मारण कूँ दौर्‌यो ।
जहर देन की घात बिचारी, निरमल जल में ले विष घोर्‌यो ॥
जब चरणोदक सुण्यो सरवणा[7] राम भरोसे मुख में ठोर्‌यो[8] ।
नाचन लगी जब घूंघट कैसो, लोक-लाज तिणका ज्यूँ तोर्‌यो ॥

१—काल रूपी सर्प के दशन से बच गई, अर्थात् परमेश्वर की कृपा से मुझे अमरत्व प्राप्त हो गया ।

२—रसीली, सरस, । ३—याचना की, मांगी ।

४—गाँउगी । ५—बाड़ा । ६—नज़र बन्द । ७—कानों से ।

८—मुंह मे डाला ।

नेकी बदी हू सिर पर धारी, मन हस्ती अंकुस दे मोर्यो ।
प्रकट निसान बजाय चली मैं[1], राणा रख सकल जग जोर्यो ॥
'मीरा' सबल धणी के सरणे, कहा भयो भूपति मुख मोर्यो ।

५

राम तने रङ्ग राची, राणा मैं तो सांवलिया रङ्ग राची रे ।
ताल पखावज मिरदङ्ग बाजा, साधों आगे नाची रे ॥
कोई कहे मीरा भई बावरी, कोइ कहे मदमाती रे ।
विष का प्याला राणा भेज्या, अमृत कर आरोगी[2] रे ॥
'मीरा' कहे प्रभु गिरधर नागर, जनम जनम की दासी रे ।

६

अच्छे मीठे चाख चाख, बोर[3] लाई भीलणी ।
ऐसी कहा अचारवती[4], रूप नाहीं एक रती ॥[5]
नीच कुल, ओछी जात, अति ही कुचालणी ।
झूठे[6] फल लीन्हे राम, प्रेम की प्रतीत जाण ॥
ऊँच नीच जाने नहीं, रस की रसीलणी ।
ऐसी कहा वेद पढ़ी, दिन में विमाण चढ़ी ॥[7]
हरि जू सों बाध्यो हेत, बैकुंठ में झूलणी ।
ऐसी प्रीत करे सोइ दास मीरा तरै जोइ ॥
पतित पावन प्रभु, गोकुल अहीरणी ।

१—प्रकट रूप से, डंके की चोट पर । २—चढ़ा गई ।
३—बेर । ४—आचार वाली, । कर्म कांड को मानने वाली ।
५—एक रत्ती भी रूप नहीं था, भीलनी सुन्दरी नहीं थी ।
६—जूठे । ७—स्वर्ग चली गई ।

७

तू मत बरजे माइड़ी[1], साधा[2] दरसण जाती ।
राम नाम हिरदै बसै, माहिले मन माती [3]।
माई कहै, सुन धीहड़ी, कहे गुण फूली ।।[4]
लोक सोवै सुख नीदड़ी, थूं क्यों रैणज[5] भूली ?
गेली[6] दुनियाँ बावली, ज्याँ कूँ राम न भावै ।
ज्याँ के हिरदे हरि बसे, त्यां कूँ नींद न आवै ।।
चौबास्यां[7] की बावड़ी, ज्याँ कूँ नीर न पीजे ।
हरि नाले अमृत झरे, ज्याँ की आस करीजे ।।
रूप सुरङ्गा राम जी, मुख निरखत लीजे ।
'मीरा' व्याकुल विरहिणी, अपणी कर लीजे ।।

८

राणाजी मुझे यह बदनामी लगे मीठी ।
कोइ निन्दो कोइ बिन्दो[8], मैं चलूँगी चाल अपूठी ।।[9]
सांकली[10] गली में सतगुरु मिलिया, क्यूँ कर फिरूँ अपूठी ।
सतगुरु जी सूँ बावज[11] करताँ दुरजन लोगां ने दीठी ।।[12]
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो जा अंगीठी ।

१—हे माता । २—साधुओं के । ३—अपने रंग में मगन हूं ।
४—बेटी । ५—रात्रि में । ६—पगली । ७—वर्षाऋतु की ।
८—चाहे कोई मेरी प्रशंसा करे । ९—उलटी ।
कबीर ने भी कहा है—
'प्रेम गली अति सांकरी ता मे दो न समाय, ।
१०—संकरी, संकीर्ण । ११—बातें करते । १२—देखा ।

९

करम गति टारे नाहिं टरे*
सतबादी हरिचन्द से राजा सो तो नीच घर नीर भरे।
पांच पांडु अरु कुन्ती द्रौपदी, हाड़ हिमालय गरे[1] ॥
जज्ञ किया बलि लेन सिंहासन, सो पाताल धरे।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, विष से अमृत करे ॥

१०

हरि तुम हरो जन[2] की भीर।[3]
द्रौपदी की लाज राख्यो, तुम बढ़ायो चीर ॥
भक्त कारन रूप नरहरि[4] धर‍्यो आप सरीर।
हरिन कस्यप मार लीन्हो धर‍्यो नाहिन धीर ॥
बूड़ते गजराज राख्यो कियो बाहर नीर।
'दास मीरा' लाल गिरधर दुख जहाँ तहँ पीर ॥

११

मेरो मन लागो हरि जी सूँ, अब न रहूँगी अटकी।
गुरु मिलिया रैदास जी दीन्हीं ज्ञान की गुटकी।[5]
चोट लगी निज नाम हरी की म्हारे हिवड़े[6] खटकी।
मणिक मोती परत[7] न पहिरूँ, मैं कब की नट की।[8]

---

* कबीर ने भी एक पद "करम गति टारे नाहिं टरी" लिखा है। देखिये पृ० १४३ कबीर बचनावली। (ना० प्र० स०)

१—हड्डियां हिमालय में गल गईं।

२—भक्त। ३—विपत्ति, दुःख। ४—नरसिंह का रूप।

५—गोली। ६—हृदय में। ७—कभी। ८—इनकार किया। नटकी का अर्थ नट की स्त्री नटी (नटिन) भी है।

गेणो[1] तो म्हाँरे माला दोवड़ी[2] और चन्दन की कुटकी ।
राज कुल की लाज गमाई, साधां के सङ्ग मैं भटकी ।।
नित उठ हरि जी के मन्दिर जास्याँ नाच्याँ दे दे चुटकी ।
भाग खुल्यो म्हाँरो साध सङ्गत सूँ साँवरिया की बटकी ।।
जेठ बहू की काण[3] न मानूँ, घूँघट पड़ गइ पटकी ।[4]
परम गुरां के सरन में रहस्याँ, परणाम[5] करां लुटकी ।।[6]
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरन सूँ छुटकी ।

१२

मेरां बेड़ा लगाय दीजो पार, प्रभु अरज करूँ छूँ ।
या भव में मैं बहु दुख पायो, संसा[7] सोग[8] निवार ।[9]
अष्ट करम की तलब लगी है, दूर करो दुख पार ।
यो संसार सब बह्यो जात है, लख चौरासी धार ।।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आवागवन निवार ।।

१३

अब तो निभायाँ बनेगा बाँह गहे की लाज ।*
समरथ सरण तुम्हारी साइयाँ, सरब सुधारण काज ।।

१—आभूषण । २—दोलड़ी की दुहरी । ३—लाज्ञ ।
४—छोड़ दिया । ५—प्रणाम । ६—लौट कर ।
(७)—संशय, भ्रम,,। ८—शोक । ९—दूर करो ।
*तुलना कीजिये. —
कबीर—तुमतो सरमथ साँइयां, दृढ़ कर पकरो बाँहि ।
धुर ही लै पहुँचाइयो, जनि छाड़ो मग माँहि ।

भवसागर संसार अपरबल[1] जा में तुम हो जहाज ।
निरधाराँ आधार जगत-गुरु, तुम बिन होय अकाज ।।
जुग जुग भीर करी भक्तन की, दीन्ही मोच्छ समाज ।
मीरा सरण गही चरणन की पेज[2] रखो महराज ।।

१४

म्हाँरो जनम मरन को साथी
थाँ ने नहिं बिसरूँ दिन राती ।
तुम देख्यां बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती ।।
ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ, रोय रोय अँखियाँ राती ।[3]
यो संसार सकल जग झूठो, झूठाँ कुल रानाती ।।[4]
दोउ कर जोड्याँ अरज करत हूँ सुण लीजो मेरी बाती ।
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूँ मद मातो हाथी ।।
सतगुरु दस्त[5] धर्‍यो सिर ऊपर, आँकुस दे समझाती ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, हरिचरणाँ चित राती ।।[6]
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती ।

१५

स्वामी सब संसार के (हो) सांचे श्री भगवान ।
स्थावर, जंगम, पावक पाणी, धरती बीच समान ।।
सब में महिमा तेरी देखी कुदरत के कुरबान ।
सूदामा के दारिद खोये, बारे की पहिचान ।।[7]
दो मुट्ठी तंदुल[8] की चाबी, दीन्हों द्रव्य महान ।

१—अपार । २—प्रण । ३—लाल हो गई ।
४—राणा का कुल । ५—हाथ । ६—अनुरक्त ।
७—बालक पन का परिचय था । ८—चावल ।

भारत[1] में अर्जुन के आगे आप भये रथवान ॥
उनने अपने कुल को देखा, छुट गये तीर कमान ।
ना कोई मारे, ना कोई मरता, तेरा यह अज्ञान ॥
चेतन जीव तो अजर अमर है, यह गीता को ज्ञान ।❀
मुझ पर तो प्रभु किरपा कीजै, बंदी[2] अपनी जान ॥
'मीरा' गिरधर सरण तिहारो लगै चरण में ध्यान ।

१६

अब मैं शरण तिहारी जी, मोहि राखो कृपा निधान
अजामील अपराधी तारे तारे नीच सदान[3] ।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढ़ी विमान ।
और अधम तारे बहुतेरे, भाखत सन्त सुजान ॥
कुबजा नीच भीलिनी तारी, जानै सकल जहान ।
कहँ लगि कहूँ गिनत नहिं आवै ? थकि रहे बेद पुरान ॥
'मीरा' कहे मैं शरण रावरी, सुनियो दोनों कान ।

१७

मीरा को प्रभु साची दासी बनाओ ।
झूठे धंधो से मेरा फंदा छुड़ाओ ।

१—महाभारत के युद्ध में । २—बांदी, दासी ।

❀तुलना कीजियेः—

नैनं छिन्दति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयती मारुतः ।
श्री मद्भगवद्गीता —

३ —सदना भक्त । इस पद की भाषा खड़ी बोली है ।

लूटे ही लेत विवेक का डेरा ।
बुधि-बल यदपि करूँ बहुतेरा ॥
हाय राम नहिं कछु बस मेरा ।
मरत हूँ बिबस, प्रभु धाओ सबेरा ॥
धर्म उपदेश नित प्रति सुनती हूँ ।
मन कुचाल से भी डरती हूँ ॥
सदा साधु सेवा करती हूं ।
सुमिरण ध्यान में चित धरती हूँ ॥
भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ ।
'मीरा' को प्रभु साची दासी बनाओ ॥

१८

रावलो[1] बिड़द[2] मोहिं रूड़ो[3] लागो पीड़ित पराये प्राण[4]
सगो सनेही मेरे और न कोई बैरी सकल जहान ।
ग्राह गह्यो गजराज उबारयो बूड़न दियो छे जान ॥
'मीरा' दासी अरज करत है नहिं ज[?] सहारो आन ।[5]

१९

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत ।[6]
आरुण माँड[7], अडिग[8] होय बैठा याही भजन कीरीत ॥

१—आपका । २—बिरद । ३—सुन्दर । (रूरो)

४— 'प्रण' । यह अर्थ बेलवेडियर प्रेस की प्रति में है । किन्तु 'प्रण' का 'प्राण' कर देना अच्छा नहीं जान पड़ता, यद्यपि ऐसे अनेक उदाहरण सूरदास आदि लेखकों में मिल सकते हैं । यदि प्राण का अर्थ प्राणी माना जाय तो अर्थ भी सुन्दर और स्पष्ट हो जाता है ।

५—अन्य का । ६—निर्मोया । ७—ज़मा कर । ८—स्थिर ।

मैं तो जाणू, जोगी संग चलेंगा छाँड़ गया अधबीच।
आत न दीसे जात न दीसे[1], जोगी किसका मीत॥
'मीरा' कहे प्रभु गिरधर नागर चरणन आवे चीत।

२०

हो जी[2] म्हाराज छोड़ मत जाज्यो।
मैं अबला बल नाहिं गोसाईं, तुमहिं मेरे सिरताज॥
मैं गुण हीन, गुण नाहिं गोसाईं तुम समरथ महराज।
रावली होइ ये किन[3] रे जाऊँ तुम हौ हिवड़ा रो साज॥[4]
'मीरा' के प्रभु और न कोई राखो अब के लाज।

२१

म्हाँरी सुध ज्यूँ जानो ज्यूँ लीजो जी।
पल पल भीतर पंथ निहारूँ दरसन म्हाँने दीजो जी॥
*मैं तो हूँ बहु औगुण हारी औगुण चित मत दीजो जी।
मैं तो दासी थाँरे चरण जनां[5] की मिल विछुरन मत कीजो जी॥
'मीरा' तो सतगुरु जी सरणे हरि चरणां चित दीजो जी।

२२

तुम सुनो दयाल म्हाँरी अरजी॥
भौसागर में बही जात हूँ काढ़ो तो थांरी मरजी।

१—न आते दीखता, न जाते दीखता। २—हे महाराज!
३—कहाँ। ४—तुम हृदय के भूषण हो, हृदय की शोभा हो।
*तुलना कीजिये—
"प्रभु मोरे अवगुण चित न धरो"
५—भक्तों की।

यो संसार सगो नहिं कोई साँचा सगा रघुबरजी ॥
मात पिता और कुटुँब कबीला सब मतलब के गरजी।
'मीरा' को प्रभु अरजी सुन लो चरन लगाओ थांरी मरजी ॥

२३

म्हांरे नैणा आगे रही जो जी स्याम गोविन्द।
दास कबीर घर बालद[1] जो लाया बामदेव का छान छवंद❀।
दास धना को खेत निपजायो गज की टेर सुनंद ॥
भिलणी का बेर, सुदामा का तंदुल, भर मूठड़ी[2] बुकंद[3]
करमा बाई को खींच[4] अरोग्यो, होइ परसण[5] पावंद ॥[6]
सहस[7] गोप बिच स्याम बिराजे, ज्यों तारा बिच चंद।
सब सन्तो का काज सुधारा मीरा सूँ दूर रहंद[8] ॥

२४

रघुनन्दन आगे नाचूँगी ॥
नाच नाच रघुनाथ रिझाऊँ प्रेमी जन को जाँचूगी।
प्रेम प्रीत का बाँध घघूँरा सुरत की कछनी काछूँगी ॥
लोक लाज कुल की मरजादा या में एक न राखूँगी।
पिया के पलंगा जा पौढूंगी मीरा हरि रंग राचूंगी ॥

२५

सुन लीजे बिनती मोरी मैं सरन गही प्रभु तोरी।
तुम तो पतित अनेक उधारे भवसागर ते तारयो ॥

❀ अन्तर्कथाओं के लिये परिशिष्ट देखिये।

१—बल। २—मुट्ठी, भर। ३—खाया। ४—खिचड़ी।
५—प्रसन्न हो कर खाया। ६—भोजन किया। ७—हजार।
८—रहे।

मैं सब का तो नाम न जानों कोइ कोइ भक्त बखानों ।
अम्बरीक सुदामा नामी पहुँचाये निज धामा ॥
ध्रुव जो पाँच बरस को बालक दरस दियो घनस्यामा ॥
धना भक्त का खेत जमाया कबिरा बैल चराया ।
सेवरी के जूठे फल खाये, काज किये मन भाये ।
सदना औ सेना नाई को तुम लींन्हा अपनाई ।
कर्मा की खिचड़ी तुम खाई गनिका पार लगाई ॥
'मीरा' प्रभु तुम्हरे रंग राती जानत सब दुनियाई ।

२६

जोगिया ने[1] कहियो रे अदेस ।
आऊँगी मैं नाहिं रहूँ रे कर जटाधारी भेस ॥
चीर को फाड़ं कंथा[2] पहिरूँ लेऊँगी उपदेस ।
गिनते गिनते घिस गई रे मेरी उंगलियों की रेख ॥
मुद्रा माला भेष लूँ रे, खप्पड़ लेऊँ हाथ ।
जोगिन होय जग ढूंढ़ूँ रे, सांवलिया के साथ ॥
प्राण हमारा वहाँ बसत है यहाँ तो खाली खोड़ ।[3]
मात पिता परिवार सूँ रे रही तिनका तोड़ ॥
पांच पचीसो बस किये, मेरा पल्ला न पकड़े कोय ।
'मीरा' व्याकुल बिरहिनी, कोइ आन मिलावै मोय ॥

२७

यहि विधि भक्ति कैसे होय ?
मन की मैल हिय तें न छूटी, दियो तिलक सिर धोय ॥

अन्तर्कथाओं के लिये परिशिष्ट देखिये—

१—से । २—साधुओं का कमर में पहिनने का वस्त्र । ३—खोल-देह ।

काम-कूकर लोभ-डोरी, बांधि मोहिं चंडाल ।
क्रोध-कसाई रहत घट में, कैसे मिलै गोपाल ?
बिलार विषया लालची रे, ताहि भोजन देत ।
दीन हीन है छुधारत से, राम नाम लेत ॥
आपहि आप पुजाय के रे, फूले अंग न समात
अभिमान टीला किये बहु, कहु जल कहाँ ठहरात ?
जो तेरे हिये अंतर की जानै, ता सों कपट न बनै ।
हिरदे हरि को नाम न आवै, मुखते मनिया[1] गनै ॥
हरी हितु[2] से हेत कर सागर आसा त्याग ।
'दास मीरा' लाल गिरधर, सहन कर वैराग ॥

२८

स्याम तेरी आरति लागी हो ।
गुरु परतापे[3] पाइया तन दुरगति[4] भागा हो ।
या तन को दियना करों मनसा[5] करों बाती हो ।*
तेल भरावों प्रेम का, बारों दिन राती हो ।
पाटी पारों ज्ञान की, मति मांग सँवारों हो ॥
तेरे कारन सांवरे, धन जोबन वारों हो ।
यह सेजिया बहु रङ्ग की, बहु फूल बिछाए हो ॥
पंथ मैं जोहों स्याम का, अजहूँ नहिं आये हो ।

१—माला की गुरिया । २—हितू, हितैषी । ३—प्रताप से ।
४—दुर्बुद्धि । ५—मन ।
*तुलना कीजिये—

यहितन का दिवला करूँ, बाती मेल्यौं जीव ।
लोहू पीयौं तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव । —कबीर

सावन भादो ऊमड़ो, बरषा ऋतु आई हो ॥
भौह-घटा घन घेरि के, नैनन झरिलाई हो ।
मात ! पिता तुम को दियो तुम ही भल जानो हो ॥
तुम तजि और भतार को मन में नहि आनो हो ।
तुम प्रभु पूरन ब्रह्म हो, पूरन पद दीजै हो ।
'मीरा' व्याकुल विरहिनी अपनी कर लीजे हो ॥

२९

मेरे परम सनेही राम की, नित ओळूंड़ी[1] आवे ।
राम हमारे, हम हैं राम के, हरि बिन कछु न सुहावै ॥
आवण कह गये अजहुँ न आये, जिवड़ो[2] अति उकलावै ।
तुम दरसन की आस रमैया बिस दिन चितवत जावै ॥
चरण कमल की लगन लगी अति, बिन दरसन दुख पावै ।
'मीरा' कूं प्रभु दरसन दीन्हा, आनंद बरण्यो न जावै ।

३०

चलो अगम[3] के देस काल देखत डरे ।
वहँ भरा प्रेम का हौज, हँस केला[4] करे ॥
ओढ़न लज्जा चीर, धीरज को घाघरो ।
छिमता[5] कांकण, हाथ सुमत को मुन्दरो[6] ॥
कांचो है विश्वास, चूड़ोचित ऊजलो ।
दिल दुलड़ी[7] हरि पावे सांच को दोवड़ी[8] ॥

१—स्मृति । २—हृदय ।
३—अगम्य, जहाँ पहुँच न हो सके । ४—केलि । ५—क्षमा ।
६—अँगूठी । ७—दोलड़ी का हार । ८—एक आभूषण ।

दांतो अमृत मेख,[१] दया को बोलणो ।
उबटन गुरु को ज्ञान ध्यान को धोवणो ।।
कान अखोटा[२] ज्ञान जुगत को झूठणो[३] ।
बेसर हरि को नाम, काजल है धरम को ।।
जीहर सील संतोष निरत को घूंघरो ।
बिदली गज और हार, तिलक गुरु ज्ञान को ।।
सज सोलह सिङ्गार पहिरि सोने राखड़ी ।
सांवलिया सूं प्रीत औरों से आखड़ी ।।
पतिबरता की सेज प्रभू जी पधारिया ।
गावै 'मीरा बाई' दासी कर राखिया ।।

३१

भर मारी रे बाना[४] मेरे सत गुरु बिरह लगाय के ।
पावन पंगा[५] कानन बहिरा, सूझत नाहीं नैना ।।
खड़ी खड़ी रे पंथ निहारूँ मरम न कोई जाना ।
सतगुरु औषद ऐसी दीन्ही, रूम[६] रूम भइ चैना ।।
सतगुरु जस्या[७] बैद नहिं कोई, पूछो बेद पुराना ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर अमरलोक में रहना ।।

३२

गली तो चारो ओर बन्द हुई मैं हरि से कैसे मिलूँ जाय ।
ऊँची नीची राह रपटीली,[८] पांव नहीं ठहराय ।।

१—चोप । २—अविनाशी । ३—दूरी । ४—बाण ।
५—पंगुल । ६—रोम । ७—जैसा । ८—फिसलने वाली ।
तुलना कीजियेः—कबीर बचनावली (ना० प्र० स०)
पृ० १३६—न० ६६—

सोच सोच पग धरूँ जतन से, बार बार डिग जाय।
ऊँचा नीचा महल पिया का, हम से चढ़्या न जाय॥
पिया दूर पंथ म्हांरा झीना, सुरत झकोला खाय।
कोस कोस पर पहरा पैठ्या, पैंड पैंड बटमार॥
हे विधना कैसी रच दीन्हीं, दूर बस्यो म्हांरो गाम।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, सतगुरु दई बताय॥
जुगन जुगन से बिछड़ी मीरा, घर में लीन्हा आय।

३३

म्हांरे घर आज्यो[1] प्रीतम प्यारा तुम बिन सब जग खारा[2]।
तन मन धन सब भेंट करूँ और भजन करूँ मैं थांरा।
तुम गुणवंत बड़े गुण सागर मैं हूँ जी औगुण हारा[3]॥
मैं निगुणी, गुण एको नाहीं, तुझ में जी गुण सारा।
'मीरा' कहै प्रभु कबहि मिलोगे ? बिन दरसण दुखियारा॥

३४

बरज मैं काहू की नाहिं रहूँ।
सुनो री सखी तुम चेतन होइ के, मन की बात कहूँ।
साध संगति करि हरि सुख लेऊँ, जगसूँ मैं दूर रहूँ॥
तन धन मेरो सब ही जानो भल मेरो सीस लहूँ[4]।
मन मेरो लागो सुमिरन सेती,[5] सब को मैं बोल सहूँ।
'मीरा' कहे प्रभु गिरधर नागर, सतगुरु सरन रहूँ॥

१—आओ। २—नीरस। ३—अवगुण पूर्ण।
४—चाहे मेरा सिर ले लो। ५—से।

३५

गोविन्द सूँ प्रीत करत, तबहिं क्यौं न हटकी।
अब तो बात फैल परी, जैसे बीज बट की[1]।
बीच[2] की बिचार नाहि छांय परी तट की ॥
अब चूको तो ठौर नाहिं, जैसे कला नटकी।
जल की घुरी गांठ परी,[3] रसना गुन रटकी ॥
अब तो छुड़ाय हारी बहुत, बार झटकी।
घर घर में घोल मठोल, बानी घट घट की ॥
सब ही कर सीस धारे, लोक लाज पटकी ॥
मद की हस्ती समान, फिरत प्रेम लटकी।
'दास मीरा' भक्ति बुंद हिरदय बीच गटकी[4] ॥

३६

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ ? लिखही न जाई।
कलम भरत मेरे कर कंपत, हिरदो रहो घर्राई ॥
बात कहूं मोहिं बात न आवै नैन रहै झर्राई।
किस विधि चरण कमल मैं गहि हौं सबहि अंग थर्राई ॥
'मीरा' कहे प्रभु गिरधर नागर सब ही दुख बिसराई।

१—वटवृक्ष के बीज की तरह।
२ लहर (बीचि), नदी का मध्यभाग।
३—जल के घूमने से (चक्कर) से भंवर बन जाती है।
४—मैंने भक्ति-बिन्दु का हृदय मे पान कर लिया है।

३७

मनखा[1] जनम पदारथ पायो, ऐसी[2] बहुर न आता ।
अब के मोसर[3] ज्ञान बिचारो राम राम मुख गीता ॥
सतगुरु मिलिया सुंज[4] पिछाणी, ऐसा ब्रह्म मैं पाती ।
सगुरा सूरा अमृत पीवे, निगुरा प्यासा जाती ॥
मगन भया मेरा मन सुख में, गोविन्द का गुण गाती ।
साहब पाया आदि अनादी, नातर[5] भव मैं जाती ॥
'मीरा' कहे इक आस आप की, औरा सूँ सकुचाती ।

३८

जग में जीवणा थोड़ा, राम कुण[6] कहे रे जंजार[7] ।
मात पिता तो जन्म दियो है, करम दियो करतार ॥
कइ रे[8] खाइयो, कइ रे खरचियो, कइरे कियो उपकार ।
दिया लिया तेरे संग चलेगा और नहीं तेरी तार ॥
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, भज उतरो भवपार ॥

३९

वारी[9] वारी हो राम हूं वारी तुम आज्यो गली हमारी ।
तुम देख्यां बिन कल न पड़त है, जोऊँ बाट तुमारी ॥
कूण सखी सूँ तुम रंग राते, हम सूँ अधिक पियारी ।
किरपा कर मोहिं दरसण दीज्यो, सब तकसीर बिसारी ॥

१—मनुष्य । २—ऐसी जनम यह प्रयोग आधुनिक हिन्दी के अनुसार अशुद्ध है । ३—अवसर । ४—सूझ । ५—नहीं तो । ६—कोई । ७—जन । जानवर, नर-पशु । ८—कितना । ९—निछावर हूँ ।

फुलना रे पाथरी[1] पछेड़ी[2] ।
पय पकवान मिठाई ने मेवा
सेवै याँ ने सुन्दर दहींड़ी[3] ।
लवंग, सुपारी ने एलची,
तज वाला कथा चुनारी पान बीड़ी ।
सेज बिछाऊँ ने पासा मँगाऊँ ।
रमवा[4] आवो तो जाय रातड़ी ।।

मन के प्रति

४२

भजले रे मन गोपाल गुणा[5] ।
अधम तरे अधिकार भजन सूँ, जोइ आये हरि की सरणा
आवे स्वास तो साखि[6] बताऊँ,अजामेल गणिका सदना ।।
जो कृपाल तन, मन, धन, दीन्हों, नैना, नासिका मुख रसना।
जा को रचत मास दस लागे ताहिन सुमिरो एक दिना ।।
बालापन सब खेल गँवाया, तरुन भयो जब रूप घना ।
वृद्ध भयो जब आलस उपज्यो, माया मोह भयो मगना ।।
गज अरु गीदहु[7] तरे भजन सूँ, कोऊ तर्यो नहिं भजन बिना
धना, भगत, पिया पुनि सेवरी, मीरा की हूँ करो गनना ।।

१—चद्दर । २—पिछवई । ३—एक मिठाई ।
४—रमण करने । ५—गुणों से युक्त । ६—गवाही ।
७—गृद्धराज जटायु ।
अन्तंकथाओं के लिये परिशिष्ट देखिये ।

४३

मन रे परसि हरि के चरन।
सुभग[1] सीतल कंवल कोमल, त्रिविध[2] ज्वाला हरन।
जिन चरन प्रह्लाद परसे, इन्द्र प्रदवी धरन॥
जिन चरन ध्रुव अलट कीने, राखि अपनी सरन।
जिन चरन ब्रह्मांड भेंटयो नख सिख सिरीधरन॥
जिन चरन प्रभु परसि लीनो तरी गोतम धरन[3]।
जिन चरन काली नाग नाथ्यो, गोपि लीला करन॥
जिन चरन गोबरधन धास्यो, इन्द्र को गर्व हरन।
'दासि मीरा' लाल गिरधर, अगम तारण तरन॥

४४

राम नाम रस पीजे मनुआँ, राम नाम रस पीजे।
तज कुसंग सतसंग बैठ नित, हरि चरचा सुन लीजे॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ, चित से बहाय दीजे।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर ताहि के रंग में भीजे॥

४५

भजमन चरन कमल अविनासी।
जेतइ[4] दीसे धरनि गगन बिच तेतइ सब उठि जासी।
कहा भयो व्रत तीरथ कीन्हे ? कहा लिये करवत कासी ?
इस देही का गरव न करना, माटी में मिल जासी।

१—सुन्दर। २—दैहिक, दैविक, भौतिक ताप। ३—घरनी, स्त्री।
४—जितना।

यो संसार चहर की बाजी,[1] साँझ पड़याँ उठि जासी ॥
कहा भयो है भयो है भगवा पहिरयां घर तज भये सन्यासी ।
जोगी होय जुगुति नहिं जानी उलटि जनम फिर आसी ॥
अरज करों अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर काटो जम की फाँसी ॥

४६

लेताँ लेताँ राम नाम रे ।
लोकड़यां[2] तो लाज मरे छे ॥
हरि मंदिर जातां पावलिया[3] रे दूखे,
फिरि आवे सारो गाम[4] रे ।
झगड़ो थाप[5] त्याँ[6] दौड़ी ने जाय रे ॥
मुकीन[7] घर ना काम रे ।
भाँड भवैया[8] गनिका[9] नृत्य करतां ।
बेसी[10] रहे चारे जाम[11] रे ॥
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर,
चरण कमल चित हाम रे ॥

१—चहर बया चिड़िया को कहते है। संसार उन चिड़ियों के खेल के समान है जो सांझ होते ही बसेरा के लिये चली जाती हैं।

२—लोग। ३—पाँव। ४—गाँव। ५—हो। ६—वहाँ।

७—छोड़ कर।

८—ब्राह्मणों की एक गाने वाली जाति। ये स्वांग करने में बड़े निपुण होते हैं।

९—वेश्या। १०—बैठे रहते हैं। ११—पहर।

४७

इन सरवरि या[1] परल[2] मीरा बाई सांपड़े[3]
सांपड़ किया अस्नान, सुख स्वामी जप करे।
प्रश्न—होय बिरंगी[4] नार, डगरा[5] बिच क्यों खड़ी ?
कांई थारो पीहर दूर घराँ सासू लड़ी।
उत्तर—नहीं म्हाँरो पीहर दूर घरा सासू लड़ी॥
चल्यो जारे असल गँवार, तुझे मेरी क्या पड़ी॥
गुरु म्हाँरा दीन दयाल, हीरां का पारखी।
दियो म्हाँने ज्ञान बताय, संगत कर साध री॥
इन सरवरिया रा हंस सुरंग थारी पांखड़ी।
राम मिलन कब होय, फड़ोके[6] म्हारी आख री॥
राम गये बनबास को सब रंग ले गये।
ले गये म्हारी काया को सिङ्गार, तुलसी की माल दे गये॥
खोई कुल की लाज, मुकुंद थारे कारने।
बेगहि लीजो सम्हाल, मीरा पड़ी बारने[7]॥

४८

मीरा:— माई, माँ ने सुपने में परण[8] गया जगदीस।
सोती को सुपना आविया जी, सुपना विस्वा बीस॥
मा:— गैली[9] दीखे मीरा बावली, सुपना आल जंजाल।

१—सरोवर। २—किनारे।

३—स्नान करती है। इस सरोवर के तट पर मीराबाई स्नान करती है।

४—उदास। ५—पथ में। ६—फड़कती हैं। ७—दरवाज़े पर।

८—परिणय, विवाह। ९—पागल।

मीराः—माई म्हांने सुपने मे, परण गया गोपाल ॥
अंग अंग हल्दी मैं करी जी, सुधे[1] भीज्यो गात।
माई म्हाँने सुपने में, परण गया दीना नाथ ॥
छप्पन कोटा जहाँ जान पधारे,[2] दुलहा श्री भगवान।
सुपने में तोरन बाधियों जी सुपने में आई जान ॥
'मीरा' के गिरधर मिल्या जी, हो गया अचल सुहाग।

श्रीकृष्ण विषयक

४९

मेरो मन बसि गयो गिरधर लाल सों।
मोर मुकुट पीताम्बरो गल बैजंती माल ॥
गउवन के संग डोलत हो जसुमति को लाल।
कालिन्दी के तीर हो, कान्हा गउवा चराय ॥
सीतल कदम की छाहियाँ हो, मुरली बजाय।
जसुमति के दुवरवाँ ग्वालिन सब जाय ॥
बरजहु आपन दुलरवा हमसे अरुझाय।
वृंदाबन क्रीड़ा करै गोपिन के साथ।
सुर नर मुनि सब मोहे हो ठाकुर जदुनाथ ॥
इद्र कोप घन बरखो, मूसल जल धार।
बूड़त वृज को राखेऊ मोरे प्रान अधार ॥
'मीरा' के प्रभु गिरधर हो सुनिये चित लाय।
तुम्हरे दरस की भूखी हो, मोहि कछु न सोहाय ॥

१—सुधासे। २—बारात।

५०

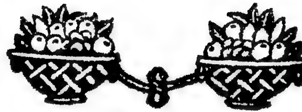
कूण[१] बांचे पाती, प्रभु बिन कूण बांचै पाती ?
कागद लै ऊधो जी आये, कहाँ रहे साथी ।
आवत जावत पाँव घिसा रे (बाला) अँखियाँ भईं राती ॥
कागद ले राधा बाँचण बैठी भर आई छाती ।
नैन नीरज[२] में अंब[३] बहै (बाला) गङ्गा बहि जाती ॥
पाना[४] ज्यू पीला पड़ी रे (बाला) अन्न नहि खाती ।
हरि बिन जिवड़ो यूँ जलै रे (बाला) ज्यूँ दीपक संग बाती ॥
साँचा कुछ चकोर चंदा, झोलै[५] बहि जाती ।
ब्रज नारी की बिनती रे (बाला), राम मिले मिल जाती ॥
मनै भरोसौ राम को रे (बाला) डूबत तार्यौ हाथी ।
दास मीरा लाल गिरधर, साँकड़[६] हारौ साथी ॥

५१

जब से मोहिं नंद नँदन दृष्टि पड़यो याई ।
तब से परलोक लोक कछू ना सोहाई ॥
मोरन की चन्द्र कला सीस मुकुट सोहै ।
केसर को तिलक भाल, तीन लोक मोहै ॥
कुन्डल की अलक, झलक कपोलन पर छाई ।
मनो मीन सरवर तजि मकर[७] मिलन आई ॥
कुटिल भृकुटि , तिलक भाल, चितवन में टोना ।
खंजन अरु मधुप मीन भूले मृग छौना ॥

१—कौन । २—कमल । ३—जल । ४—पान । ५—झोंका ।
६—संकट में पड़ा हुआ । ७—मगर ।

सुन्दर अति नासिका, सुग्रीव तीन रेखा ।
नटवर प्रभु वेष धरे, रूप अति विशेषा ।।
अधर बिंब, अरुन नैन, मधुर, मंद, हाँसी ।
दसन दमक दाड़िम द्युति, चमके चपलासी[1] ।।



१—बिजली ।

प्रीतम के चरणों में

१

आली रे, मेरे नैनन बान पड़ी ॥
चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी ।[१]
कब की ठाढ़ी पंथ निहारूँ, अपने भवन खड़ी ?
कैसे प्रान पिया बिन राखूँ, जीवन मूल जड़ी ?[२]
'मीरा' गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहै बिगड़ी ॥

२

पिया म्हारे[३] नैणा आगे रह्ज्यो[४] जी ॥
नैणा आगे रह्ज्यो म्हाने[५] भूल मत जाज्यो जी ।[६]
भवसागर में बही जात हूँ, बेग म्हारी सुध लीज्यो जी ॥
राणा जी भेजा विष का प्याला सो, अमृत कर दीज्यो जी ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, मिल बिछुरन[७] मत कीज्यो जी ॥

३

कोई कछू कहे, मन लागा ॥
ऐसी प्रीत लगी मनमोहन, ज्यूँ सोने में सोहागा ।
जनम जनम का सोया मनुवाँ,[८] सतगुरु शब्द[९] सुन जागा ॥

१—उरबिच आन अड़ी—मेरे हृदय के मध्य में श्रीकृष्ण की मूर्ति स्थित हो गई । २—जो प्राणेश्वर मेरे लिये संजीवनी बूटी है ।
३—मेरे । ४—रहना । ५—मुझे । ६—जाना । ७—वियोग ।
८—मन । ९—सदगुरु का बताया हुआ परमेश्वर का नाम ।

मात पिता सुत कुटुम कबीला[१] टूट गया ज्यूँ तागा।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारा जागा ॥

४

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिया को पंथ निहारते, सब रैन बिहानी[२] हो ॥
सखियन मिल के सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिन देखे कल ना[३] परे, जिय ऐसी ठानी हो ॥
अंग छीन व्याकुल भई, मुख पिय पिय बानी[४] हो।
अन्तर वेदन विरह की[५] वह पीर न जानी हो ॥
ज्यों चातक घन को रहें, मछरी जिमि पानी हो ॥
'मीरा' व्याकुल बिरहिनी, सुध बुध बिसरानी हो ॥

५

मैं अपने सैयाँ[६] संग सांची।
अब काहे की लाज सजनी[७] प्रगट ह्वै नाची ॥
दिवस भूख न चैन कबहिं नींद निसु नासी।
बेधवार को पार ह्वैगो, ज्ञान गुह[८] गाँसी ॥[९]
कुल कुटुम्ब सब आनि बैठे, जैसे मधु मासी[१०]।
'दास मीरा' लाल गिरधर मिटी जग हाँसी ॥

१—स्त्री। २—व्यतीत हो गई।
३—चित्त को शांति नहीं मिलती।
४—मुख से सदा 'प्रियतम' 'प्रियतम' का शब्द होता रहता है।
५—हृदय में वियोग की वेदना है। ६—स्वामी, प्रेमी।
७—सखी। ८—गूढ़, गुप्त। ९—गांस। १०—मधु मक्खी।

६

मैं हरि बिनु कैसे जिऊँ री माय ।।
पिय कारन बौरी भई, जस काठहि घुन खाय ।[1]
औषध मूल न संचरै, मोहि लागो बौराय ।।
कमठ[2] दादुर[3] बसत जल मँह जलहि ते उपजाय ।
मीन जल के बीछुरे तन जन तलफि के मरि जाय ।।
पिय ढूँढ़न बन बन गई, कहुँ मुरली धुन पाय ।
'मीरा' के प्रभु लाल गिरधर, मिलि गये सुखदाय ।।

७

हेरी, मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दरद न जाने कोय ।
सूली ऊपर सेज हमारी,[4] किस बिध सोना होय ??
गगन मंडल पै सेज पिया की, किस बिध मिलना होय ।
घायल की गति घायल जानै, की[5] जिन लाई होय ।।
जौहरी की गति जौहरी जानै की जिन जौहर होय ।

१—मेरे शरीर की दशा वियोग के कारण घुन लगे काठ की तरह हो रही है ।

२—कछुवा । ३—मेंढक ।

४—इस पद में मीरा प्रेम मार्ग की कठिनता दिखाती है । सूली की यहाँ पर सेज है और वह सेज भी यहाँ नहीं गगन मण्डल पर बिछी हुई है । कबीर ने प्रेम की कठिनता बहुत दिखाई है:—

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देई ले जाय ।

५—अथवा ।

दरद की मारी बन बन डोलूँ, बैद मिला नहिं कोय।
'मीरा' की प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद सँवलिया[1] होय॥

८

नातो नाम को मोसूँ तनक न तोड़्यो जाय।
पानां ज्यूँ पीली पड़ी रे, लोग कहै पिन्ड रोग[2]।
छाने[3] लांघन[4] मैं किया रे, राम मिलण के जोग।
बावल[5] बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हारी बांह॥
मूरख बैद मरम नहि जाणे, करक[6] कलेजे माँह।
जाओ बैद घर आपणो रे, म्हारो ताव न लेय॥
मैं तो दाधी[7] विरह की रे, काहे कूँ औषद देय?
माँस गलि गलि छीजिया रे, करक रह्या गल आहि[8]।
आगुलियाँ की मूँदड़ी, म्हारे आवण लागी बाँहि॥

९

बन्सीवारो[9] आयो म्हारे देस, थाँरी साँवरी सूरत, वाली बैस।[10]
आऊँ आऊँ कर गया साँवरा, कर गया कौल[11] अनेक॥
गिनते गिनते घिस गई उंगली, घिस गइ उंगली की रेख।
मैं बैरागिन आदि की, थांरे म्हांरे कब को सनेस॥

१—सांवला, घनश्याम।

२—पांडु रोग—इस रोग से पीड़ित पुरुष को सारी वस्तुयें पीली दीखती हैं।

३—छिपे रूप मे। ४—लंघन, उपवास। ५—पिता।

६—कसक, दर्द। ७—दग्ध जली।

८—हाड़। विरह की वेदना से हाड़ गल गल कर गिर रहा है।

९—मुरलीधर-श्रीकृष्ण। १०—कम अवस्था। ११—क़रार, वादा।

बिन पानी बिन साबुन साँवरो हुइ गई धुई सफेद ।
जोगिन हुई जंगल सब टेरूँ तेरा न पाया भेस ।।
तेरी सूरत के कारणे धर लिया भगवा भेस ।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, घूंघरवाला केस ।।
'मीरा' को प्रभु गिरधर मिल गये, दूना बढ़ा सनेस ।

१०

पिया इतनी बिनती सुन मोरी, कोइ कहियो रे जाय ।।
औरन सूँ रस बतियाँ करत हो, हम से रहे चित चोरी ।
तुम बिन मेरे और न कोई, मैं सरणागत तोरी ।।
आवन कह गये अजहुँ न आये, दिवस रहे अब थोरी ।
'मीरा' कहे प्रभु कब रे मिलोगे ? अरज करूँ कर जोरी ।।

११

प्यारे, दरसन दीज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय ।।
जल बिन कमल, चन्द बिन रजनी,[1] ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी ।
आकुल व्याकुल फिरूँ रैण दिन, बिरह कलेजे खाय ।।
दिवस न भूख, नींद नहि रैणा, मुख सूँ कथत न आवै बैणा।
कहा कहूँ, कछु कहत न आवै, मिल कर तपन बुझाय ।।
क्यों तरसावो अन्तर जामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी ।
'मीरा' दासी जनम जनम की, परी तुम्हारे पाय[2] ।

१२

मेरे तो गिरधर गुपाल, दूसरो न कोई ।
जा के सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ।।

१—रात्रि । २—चरणों पर ।

तात, मात, भ्रात, बंधु, अपना नहि कोई।
छांड दई कुल की कान,[1] क्या करेगा कोई ?
संतन ढिग[2] बैठि बैठि, लोक लाज खोई।
चुनरी के किये टूक टूक, ओढ़ लीन्ह लोई ।।
मोती मूँगे उतार बन माला पोई।
अँसुवन-जल सींचि सींचि प्रेम-बेलि बोई ।।
अब तो बेल फैल गई, आनंद फल होई।
दूध की मथनिया, बड़े प्रेम से बिलोई ।।
माखन जब काढ़ि लियो, छाछ पिये कोई।
आई मैं भक्ति काज, जगत देख मोही।
'दासी मीरा' गिरधर प्रभु तारे अब मोही ।।

इस परम प्रसिद्ध पद का दूसरा पाठ भी प्रचलित है।:—

"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई साधो, सकल लोक जोई।

भाई छोड्या, बंधु छोड्या, छोड्या सगा सोइ।
साध सङ्ग बैठ बैठ लोक लाज खोई।

भगत देख राजी भई, जगत देखि रोई।
अंसुवन जल सींचि-सींचि, प्रेम बेलि बोई।

दधि-मथि घृत काढ लियो डार दई छोई।
राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई।

अब तो बात फैल गई, जाने सब कोई।
'मीरा' राम लगन लागी, होनीहोय सो होई।

१—लाज, कुल की मर्यादा। २—पास।

१३

स्याम मोसूँ एेंडो[1] डोले हो ।
औरन सूँ खेले धमार[2] म्हाँ सू मुखहुँ न बोले हो ॥
म्हारी गलियाँ न फिरे, वाके आंगण डोले हो ।
म्हारी अंगुली ना छुवे, वाकी बहियाँ मोरे हो ॥
म्हारी अंचरा ना छुवे, वाको घूंघट खोले हो ।
'मीरा' को प्रभु साँवरो, रङ्ग-रसिया डोले हो ॥

१४

पिया मोहि आरत तेरी हो ।
आरत तेरे नाम की, मोहि साँझ सबेरी हो ॥
या तन को दिवला[3] करूँ, मनसा की बाती हो ।
तेल जलाऊँ प्रेम को, बालूँ दिन राती हो ॥
पटियाँ पारूँ ज्ञान की, बुधि मांग संवारू हो ।
पिया तेरे कारणे, धन जोबन गारूँ हो ॥
सेजड़िया बहु रंगिया, चङ्गा फूल बिछाया हो ।
रैन गई, तारा गिनत, प्रभु अजहु न आया हो ॥
आया सावन, भदवा[4], वर्षा ऋतु आई हो ।
स्याम पधारथा सेज में, सूती सैन जगाई हो ॥[5]
तुम हो पूरे साइयाँ, पूरा सुख दीजे हो ।
'मीरा' व्याकुल विरहिणी, अपनी कर लीजे हो ॥

१—तिरछे रहते हो । २—धमार, एक राग ।

३—दीवटा, शरीर के दीवट मे प्रेम का तेल जला कर और मन की बत्ती बना कर रात दिन जलाया करूँ ।

४—भादों । ५—मैं सो रही थी प्रियतम ने इशारे से जगा दिया ।

१५

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल ॥
मोहनी मूरति, साँवरि, सूरति बने नैन विसाल ।
अधर-सुधा-रस मुरली राजित[1], उर बैजन्ती[2] माल ॥
छुद्र घंटिका[3] कटि तट सोभित, नूपुर शब्द रसाल[4] ।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्त-बछल गोपाल ॥

१६

आली[5], साँवरो की दृष्टि मानो प्रेम कटारी है ।
लागत बेहाल भई, तन की सुधि बुद्धि गई,
तन मन व्यापो प्रेम, मानो मतवारी है ।
सखियाँ मिलि दुइ चारी, बावरी सी भई न्यारी[6]
हौं तो वाको नीके जानो, कुंज को विहारी है ॥
चन्द को चकोर चाहे, दीपक पतंग[7] दाहै,
जल बिना मीन जैसे, तैसे प्रीत प्यारी है ।
विनती करो हे स्याम ! लागों मैं तुम्हारे पाय[8],
मीरा प्रभु ऐसे जानो दासी तुम्हारी है ॥

१७

दरस[9] बिन दूखन लागे नैन ।
जब से तुम बिछुरे मेरे प्रभु जी, कबहुँ न पायो चैन ॥
शब्द सुनत मेरी छतियाँ कंपै, मीठे लागे तुम बैन ।

१—मुरली से शोभित होठों का अमृत । २—करधनी की घंटी । ३—मधुर । ४—सखी । ५—अलग ६—फतिंगा । ७—पांव । ८—दर्शन ।

एक टकटकी पंथ निहारूँ, भई छमासी रैन ॥[1]
विरह विथा कासूँ कहूँ सजनी ? बह गइ करवत ऐन ।[2]
'मीरा' के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटन सुख दैन ?

१८

माई मैं तो लियो रमैयो मोल ।
कोई कहे छानी[3], कोइ कहे चोरी, लियो है बजंता ढोल[4] ॥
कोई कहे कारो, कोई कहे गोरो, लियो है मैं आँखी खोल ।
कोई कहे हल्का, कोई कहे भारी, लियो है तराजू तौल ॥
ननका गहना मैं सब कुछ दीन्हा, दिऐ हैं बाजू बन्द खोल ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, पुरब जनम का है कौल[5] ॥

१९

स्याम को संदेसो आयो, पतियाँ लिखाय माय ।
पतियाँ अनूप आई, छतियाँ लगाय लीनी ॥
अचल[6] की दे दे ओट, ऊधो पै बँचाई[7] है ।
बाल की जटा बनाऊँ, अंग तो भभूत लाऊँ ॥
फाड़ूँ चीर, पहिरूँ कंथा, जोगिन बन जाऊँगी ।
इन्द्र के नगारे बाजे, बादल की फौज आई ॥
तोप खाना, पेसखाना[8], उतरा आया बाग में ।

१—रात ६ महीने के बराबर हो गई ।
२—हमारे कलेजे पर आरी चल गई । ३—गुप्त रूप से ।
४—ढोल बजा कर अर्थात् सब के सामने प्रकट रूप से ।
५—क़रार, वादा ।
६—अंचल । ७—पठवाई । ८—पेश ख़ेमा ।

मथुरा उजाड़ कीन्ही, गोकुल बसाय लीन्हीं ।।
कुवजा सूँ बाँध्यो हेत[1], मीरा गाय सुनाई है ।

२०

मेरे प्रीतम प्यारे राम ने, लिख भेजूँ री पाती ।
स्याम सनेसो कबहुँ न दीन्हों, जान बूझ गुझ[2] बाती ।।
ऊंची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ, रोय रोय अखियाँ राती ।[3]
तुम देख्याँ बिन कल न परत है, हियो फाटत मोरी छाती ।।
'मीरा' कहे प्रभु कब रे मिलोगे, पूर्व जनम के साथी ।

२१

राम मिलण को घणो उमावो नित उठ जोऊँ बाटड़िया ।[4]
दरसण बिन मोहि पत न सुहावै कल न पड़त है आँखड़ियाँ ।।
तलफ तलफ के बहु दिन बीते, पड़ी विरह की फांसड़ियाँ ।
अब तो बेग दया कर साहेब, मैं हूँ तेरी दासड़ियाँ ।।[5]
नैणा दुखी दरसण को तरसै, नाभि न बैठे सांसड़ियाँ ।
रात दिवस यह आरत मेरे, कब हरि राखे पासड़ियाँ ।।[6]
लगी लगण छूटण की नाहीं, अब क्यूँ कीजे आंटड़ियाँ ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर पूरो मन की आसड़ियाँ ।।[7]

२२

घड़ी एक नहीं आवड़े[8], तुम दरसण बिन मोय ।
तुम हो मेरे प्राण जी, कासूँ जीवण होय ?

१—स्नेह । २—गूढ़ । ३—रक्तवर्ण, लाल ४—बाट, राह ।
५—दासी । ६—पास । ७—आशायें । ८—सुहाता है ।

धान[1] न भीवे, नींद न आवे, बिरह सतावे मोय ।
घायल सी घूमत फिरूँ (रे) मेरा दरद न जाणे कोय ।।
दिवस तो खाय[2] गमायो, रे, रैण गमाई सोय ।
जो मैं ऐसा जाणती, रे प्रीत किये दुख होय ।।
नगर ढिढोंरा फेरती,रे, प्रीति करो मत कोय ।
पंथ निहारूँ, डगर बुहारूँ, ऊबी[3] मारग जोय ।।
'मीरा' के प्रभु कब रे मिलोगे ? तुम मिलयाँ सुख होय ।

२३

नींद लड़ी नहि आवै सारी रात, किस बिध होइ परभात[4] ?
चमक[5] उठी सपने, सुध भूली, चन्द्रकला[6] न सोहत ।
तलफ तलफ जिव जाय हमारो, कब रे मिले दीनानाथ ?
भइ हूं दिवानी, तन खुध भूली, कोई न जानी म्हाँरीं बात ।
'मीरा' कहै बीती सोइ जानै, मरण जीवण उन हाथ ।

२४

मैं तो लागी रहौं नँदलाल से
हमारे बारहि[7] दूज न पार[8]
लाल लाल पगिया, भिन भिन बार ।
साँकर खटोलना[9] दुइ जन बीच ।।

१—भोजन । २—खाने पीने में । ३—खड़ी-खड़ी ।
४—प्रातःकाल । ५—चौंक पड़ना । ६—चाँदनी । ७—है ।
८—प्रेमी । ९—'साँकर खटोलना' का प्रयोग कबीर ने भी किया है:—

पायो सत नाम गले के हरवा ।
सांकर खटोलना रहनि हमारी, दुबरे दुबरे पांच कँहरवा ।

मन कइले बरष, तन कइले कीच।
कहाँ गइलें बछरू, कहँ गइलीं गाय॥
कहँ गइलें धेनु-चरावन-राय[१] ?
कहँ गइलीं गोपीं कहँ गइले बाल ?
कहँ गइले मुरली बजावन हार ?
मीरा के प्रभु गिरधर लाल।
तुम्हरे दरस बिन भइल बेहाल॥

२५

तेरा कोइ नहिं रोकन हार, भवन होय मीरा चली।
लाज, सरम, कुल की मर जादा, सिर से दूर करी।
मान अपमान दोऊ धर पटके, निकली हूं ज्ञान गली॥
ऊँची अटरिया, लाल किवड़िया, निरगुण सेज बिछी।
पचरंगी झालर तुम सोहै, फूलन फूल कली॥
बाजूबंद कडूला[२] सोहै, मांग सेंदुर भरी।
सुमिरन[३] थाल हाथ में लीन्हा, सोभा अधिक भली।
सेज सुखमणा[४] मीरा सोवे, सुभ है आज धरी॥
तुम जावो राणा घर अपने, मेरी तेरी नाहि सरी[५]।

१—गोपाल, कृष्ण।

२—एक प्रकार का आभूषण। ३—भगवान का नाम जपना।

४—हठ योग और तन्त्र के अनुसार शरीर के अन्तंगत तीन प्रधान नाड़ियों में से एक हैं। नासिका के ऊपर ब्रह्मरंध्र में सुषुम्ना नाड़ी स्थित हैं। यह त्रिगुणमयी और चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि स्वरूपिणी है।

५—पटेगी।

२६

बैद को सारो[1] नाहीं रे माई, बैद को नाहि सारो।
कहत ललिता[2] बैद बुलाऊँ आवै नंद को प्यारो॥
वो आयाँ दुख नाहि रहैं गो, मोहि पतियारो।
बैद आप कर हाथ जो पकड़्यो, रोग है भारो॥
परम पुरुष की लहर ब्यापी,[3] डस गयो कारो[4]।
मार चन्दो[5] हाथ ले, हरि देत है डारो॥
दासी मीरा लाल गिरधर विष कियो न्यारो।

२७

साजन घर आवो मीठा बोला[6]।
कब की खड़ी खड़ी पंथ निहारूँ, थाँहीं आया होसी भला[7]।
आवो निसंक, संक मत मानो, आयाँ ही सुख रहला।
तन मन वार करूँ न्योछावर, दीजो स्याम मोहेला॥
आतुर बहुत बिलम नहि करणा, आयाँही रंग रहेला।

१—बस। २—राधा की अतरंग सखी।

३—इस पद में मीरा परम पुरुष के वियोग द्वारा जनित अवस्था का वर्णन कर रही है। इस वियोग का अनुभव भगवान का परम भक्त ही कर सकता है।

४—परम पुरुष के वियोग की पीड़ा काली नाग के दंशन के समान दुखद है।

५—मोर पंख से बने मुकुट का चन्द्रमा।

६—प्रियभाषी प्यारे मेरे घर आवो।

७—तुम्हारे आने से अच्छा होगा, आनन्द प्राप्त होगा।

तेरे कारण सब रंग त्यागा, काल तिलक, तमोला[१] ।।
तुम देख्याँ बिन कल न परत है, कर धर रही कपोला[२] ।
मीरा दासी जनम जनम की, दिल की घुंडी खोला ।।

२८

ऐसे पिया जान न दीजै हो ।।
चलो री सखी मिलि साखि के, नैना रस पीजे हो ।
स्याम सलोनो[३] साँवरो, मुख देखे जीजे हो ।।
जोइ जोइ भेष सों हरि मिलैं, सोइ सोइ भल कीजे हो ।।
'मीरा' के गिरधर प्रभू, बड़ भागन रीझे हो ।।

२९

सखी री, लाज बैरन भई ।।
श्री लाल गोपाल के सँग काहे नहीं गई ।।
कठिन क्रूर अक्रूर आयो साजि रथ कँह नई ।।
रथ चढ़ाय गोपाल लै गो, हाथ मीजत रही ।।
कठिन छाती स्याम बिछुरत बिरह तें तन तई ।।
'दास मीरा' लाल गिरधर बिसर क्यों ना गई ।।

३०

जोगी, मत जा, मत जा, मत जा, पाय परूँ मैं चेरा तेरी हौं ।।
प्रेम भगति को पैंडों[४] ही न्यारो, हम कूँ गैल[५] बता जा ।।
अगर चंदन की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा ।।

१—पान । २—गाल पर हाथ रखना चिन्ता सूचक है ।
३—सुन्दर, सलावण्य । ४—राह, पगडंडी । ५—गली ।

जल बल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा ॥
'मीरा' कहे प्रभू गिरधर, जाते में जोत मिला जा[1] ॥

३१

राणा जी ! मैं गिरधर रे घर जाऊँ ।
गिरधर म्हाँरो[2] साचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ ॥
रैन पड़े तब ही उठ जाऊँ, भोर भये उठ जाऊँ ।
रैन दिना वा के सँग खेलूँ, ज्यों रीझे ज्यों रिझाऊँ ॥
जो वस्त्र पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सो खाऊँ ।
मेरे उनके प्रीत पुरानी, उन बिन पल न रहाऊँ ॥
जहँ बैठावे जितही बैठूँ, बेचे तो बिक जाऊँ ।
जन 'मीरा' गिरधर के ऊपर, बार बार बल जाऊँ ॥

३२

राणाकी जी थाँरो देसड़लो[3] रँग रूढ़ो[4] ॥
थाँरे मुलक में भक्ति नहींछे, लोग बसें सब कूड़ो[5] ॥
पाट पटंबर[6] सबही में त्यागा, सिर बाँधूँ ली जूड़ो[7] ॥
माणिक मोती सबही मैं त्यागा, तज दियो कर को चूड़ो[8] ।
मेवा मिसरी मैं सबही त्यागा, त्यागा छे सक्कर बूरो[9] ॥
तन की मैं कबहुँ नहिं कीनी, ज्यूं रण माहीं सूरो[10] ॥
'मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बर पायो मैं पूरो ॥

१—आत्मा और परमात्मा की एकता । २—मेरा । ३—देश ।
४—बुरा । ५—झूठे, बुरे । ६—रेशमी कपड़े । ७—जटा ।
८—चूड़ी । ९—चीनी । १०—जिस प्रकार वीर सैनिक युद्ध में अपने शरीर की कुछ भी चिन्ता न कर लड़ता है, उसी प्रकार मैंने भी जीवन की कुछ भी चिन्ता न कर भक्ति मार्ग में पैर रखा है ।

३३

रे साँवलिया म्हाँरे आज रँगीली गणगोर[१] छे जी ॥
काली पीली बदली में बिजली, चमके मेघ घटा घनघोर छे जी ॥
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल कर रही सोर छे जी ॥
आप रँगीला, सेज रँगीली, और रँगीलो सारो साथ छे जी ॥
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, चरनाँ में म्हाँरो जोर छे जी ॥

३४

देखो सइयाँ, हरि मन काठ[२] कियो ॥
आवन कहि गयो अजहुँ न आयो करि करि बचन गयो ॥
खान-पान, सुध-बुध, सब बिसरी, कैसे करि मैं जियों ॥
बचन तुम्हारे तुमहिं बिसारे, मन मेरो हर लियो ॥
'मीरा' कहे प्रभु गिरधर नागर, तुम बिन फाटत हियो ॥

३५

'मीरा' मन मानी सुरत[३] सैल असमानी ॥
जब जब सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी ॥

१—गनगौर—स्त्रियों का एक त्योहार।

२—कृष्ण ने काठ की तरह हृदय कठोर कर लिया है।

३—सुरत—स्मृति।

मीरा के विचार में आत्मा का परमात्मा से वियोग हो गया है। आत्मा को संसार में अपने पुराने निवास स्थान की सुध आती है और उसे परम पुरुष से मिलन की चाह उत्पन्न होती है। इस परमपुरुष के वियोग में मीरा को लौकिक वियोग के समान कष्ट होता है। वह इस वियोग जनित कष्ट के दूर करने की दवा देश में घूम घूम कर खोजती है और अन्त में वह दवा रैदास सन्त द्वारा प्राप्त होती है।

ज्यों हिये पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी ॥
रात दिवस मोहिं नींद न आवत, भावे अन्न न पानी ॥
ऐसी पीर बिरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी ॥
ऐसा बैद मिलै कोइ भेदो, देस विदेस पिछानी ॥
तासों पीर कहूं तन केरी, फिर नाहँ भरमों खानी ॥
खोजत फिरों भेद वा घर को, कोई न करत बखानी ॥
रैदास संत मिले मोहिं सतगुरु, दीन्हा सुरत सहदानी[१] ॥
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी ॥
'मीरा' खाक खलक सिर डारी,[२] मैं अपना घर जानी ॥

३६

गोबिंद कबहुँ मिले पिय मेरा ॥
चरन कमल को हँस करि देखों राखों नैनन नेरा[३] ॥
निरखन की मोहिं चाव घनेरी,[४] कब देखों मुख तेरा ॥
ब्याकुल प्रान धरत नहिं धीरज, मिल तूँ मीत सबेरा ॥
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, ताप तपन बहुतेरा ॥

३७

मैं बिरहिन बैठी जागूँ, जगत सब सोवै री आली ॥
बिरहिन बैठी रँग महल में, मोतियन की लड़[१] पोवै ॥

३—चिन्ह; पहिचान का चिन्ह।

४—संसार को ख़ाक (कुछ नहीं) समझ कर सिर से उतार फेंका अर्थात् संसार के द्वन्द से अलग हो गई।

५—निकट। ६—अधिक।

१—आँसू के मोती की माला गूंथती है।

इक बिरहिन हम ऐसी देखी, अंसुअन माला पोवै ।।
तारा गिन गिन रैण बिहानी, सुख की घड़ी कब आवै ।।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, मिल के बिछुड़न जावै ।।

३८

बाल्हा मैं बैरागिण हूंगी हो ।
जीं जीं भेष म्हाँरो साहिब रीझै, सोइ सोइ भेष धरूँगी हो ।।
सील संतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूंगी हो ।
जाको नाम निरंजण कहिये, ता को ध्यान धरूँगी हो ।।
प्रेम प्रीत सूँ हरि गुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी हो ।
या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम रटूंगी हो ।
'मीरा' कहे प्रभू गिरधर नागर, साधाँ सँग रहूंगी हो ।।

३९

मैं तो राजी भई मेरे मन में, मोहिं पिया मिले इक छिन में ।।
पिया मिल्या मोहिं किरपा कीन्हीं, दीदार[1] दिखाया हरि ने ।।
सतगुरु सबद लखाया अंस री, ध्यान लगाया धुन में ।।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, मगन भई मेरे मन में ।।

४०

रमैया मैं तो थाँरे रँग राती[2] ।
औराँ[3] के पिय परदेस बसत हैं लिख लिख भेजें पाती ।

१—दर्शन ।

२—हे परमेश्वर मैं तो तेरे प्रेम में अनुरक्त हूँ । कबीर ने भी 'रमैया' शब्द का व्यवहार किया है । 'रमैया की दुलहिन लूटा बजार ।"

३—दूसरों के ।

मेरा पिया मेरे हिरदे बसत हैं। गूँज करूँ[1] दिन राती ॥
चूवा[2] चोला पहिर सखीरी, मैं झुरमट रमवा[3] जाती ।
झुरमट में मोहिं मोहन मिलिया, खोल मिलूँ गल बाटी[4] ॥
और सखी मद पी पी माती, मैं बिन पीयाँ मद माती ।
प्रेम-भठी को मैं मद पीयो, छकी फिरूँ दिन राती[5] ॥
सुरत निरत का दिवला सँजोया, मनसा पूरत बाती ।
अगम घाणि[6] का तेल सिंचाया, बाल रही दिन राती ॥
जाऊँ नी पीहरिये[7] जाऊँ नी सासुरिये, सतगुरु सैन लगाती[8] ।
'दासी मीरा के प्रभु गिरधर, हरि चरना की मैं दासी ॥

४१

म्हाँरे घर आज्यो प्रीतम प्यारा, तुम बिन सब जग खारा ॥
तन, मन, धन, सब भेंट करूँ, और भजन करूँ मैं थाँरा ॥
तुम गुणवंत बड़े गुण सागर, मै हूं जी औगण हारा ॥
मैं निगुणी, गुण एको नाहीं, तुझ में जी गुण सारा ॥
मीरा कहै प्रभू कबहि मिलौगे, बिन दरसण दुखियारा ॥

१—आनन्द करती हूँ । २—लाल ।

३—खेलने । ४—गले में बाँह डाल कर खेलती हूँ ।

५—प्रेम की भट्टी की बनी मदिरा मैने पी है और उसी के नशे में मतवाली हूँ ।

६—घानी—जिसमें तेल पेरा जाता है । मैनें अगम (परमेश्वर) की घानी का तेल दीये में रखा है जिसे मैं केवल थोड़ी देर रात ही में नहीं, किन्तु दिन रात जलाया करती हूँ

७—नैहर । ८—मैं सत गुरु द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलती हूँ ।

४२

जब से मोहिं नंद नंदन दृष्टि पड़्यो माई ।
तब से परलोक, लोक कछू ना सोहाई ॥
मोरन की चन्द्र कला सीस मुकुट सोहै ।
केसर के तिलक भाल, तीन लोक मोहै ॥
कुन्डल की अलक झलक कपोलन पर धाई ।
मनो मीन सखर तजि मकर[१] मिलन आई ॥
कुटिल भृकुटि[२], तिलक भाल, चितवन में टौना ।
खंजन अरु मधुप[४] मीन भूले मृग-छौना[५] ॥
सुन्दर अति नासिका सुग्रीव तीन रेखा[६] ।
नटवर[७] प्रभु भेष धरे रूप अनि विशेषा ॥
अधर बिंब,[८] अरुन[९] नैन, मधुर मंद हाँसी ।
दसन[१०] दमक दाड़िम[११] द्रुति, चमके चपला[१२] सी ॥

४३

हेली सुरत सोहागिन नार, सुरत मेरी राम से लगी ।
लगनी लहँगा पहिर सोहागिन, बीती जाय बहार ॥
धन जोबन दिन चार का रे जात न लागे बार ॥
झूठे बर को क्या बरूँ जी, अध बिच में तज जाय ।

१—मगर । २—भौं ।
३—एक पक्षी, जिसके नेत्रों से उपमा दी जाती है । ४—भ्रमर ।
५—मृगशावक । ६—गले पर तीन रेखा शोभित हो रही हैं ।
७—नटराज ८—अधरों की उपमा बिम्बा फल से दी जाती है ।
९—गुलाबी । १०—दाँत । ११—अनार । १२—बिजली ।

बर बराँ ला राम जी, म्हारो चूड़ो अमर हो जाय ॥
राम नाम का चूड़लो हो, निरगुन सुरमो सार ।
मीरा के प्रभू गिरधर नागर, हरि , चरणाँ की मैं दास ॥
चलाँ वाही देस प्रीतम पावाँ, चलाँ वाही देस ।
कहो कसुम्बी सारी रँगवाँ, कहो तो भगवा भेस ॥
कहो तो मोतियन माँग भरावाँ, कहो छिटकावाँ केस ॥
मीरा के प्रभू गिरधर नागर, सुनियो बिरद के नरेस ॥

४४

नैनन बनज बसाऊँ री, जो मैं साहिब पाऊँ[1] ॥
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न जाऊँ री ॥
त्रिकुटी[2] महल में बना है झरोखा, तहाँ से झाँकी लगाऊँ री ।
सुन्न महल[3] में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री ।
'मीरा' के प्रभू गिरधर नागर, बार बार बल जाऊँ री ॥

यदि मुझे साहिब मिल जायँ तो मैं अपनी बनजारे सी आँखों को बसा रखूँ, स्थिर कर रखूँ ।

इस पद में अनेक योग के शब्दों का प्रयोग है । और इसकी रचना पर सन्तों का प्रभाव स्पष्ट है ।

२—त्रिकूट चक्र का स्थान । दोनों भौहों के बीच के कुछ ऊपर का स्थान ।

३—शून्य जहाँ कुछ भी न हो । ब्रह्मरन्ध्र का छिद्र (०) रूप होता है इसी से कुंडलिनी का संयोग होता है । इस स्थान पर ब्रह्म का निवास है । योगी इसी का ज्ञान प्राप्त करते हैं ।

४५

जोगिया री प्रीतड़ी[1] है, दुखड़ा री मूल ।
हिल मिल बात बनावत मीठी, पीछे जावत भूल ।।
तोड़त जेज[2] करत नहिं सजनी, जैसे चमेली के फूल ।
'मीरा' कहै प्रभू तुम्हरे दरस बिन, लगन हिवड़ा में सूल ।।

४६

प्रेम नी[3] प्रेम नी प्रेम नी रे, मन लागी कटारी प्रेम नी रे ।।
जल जमुना माँ भरवा गया ताँ, इती गागर माथे इमे[4] नी रे ।।
काँचे ते ताँत[5] न हरि जी पे बाँधी, जेम खेचे तेमनी रे[6] ।।
'मीरा' के प्रभू गिरधर नागर, साँवली सुरत सुभ एक नी[7] रे।।

४७

यो नो रँग धत्ताँ[8] लग्यो ने माय ।।
पिया पियाला अमर रसका[9] चढ़ गई घूम घुमाय[10] ।
यो तो अमल[11] म्हाँरो कबहु न उतरे, कोट करो न उपाय ४
साँप टिपारो[11] राणा जी भेज्यो, द्यो मेड़ तणी[12] गल डार ।

१—प्रेम । २—विलम्ब । ३—की ।

४—सिर पर सोने का घड़ा था ।

५—धागा—हमें कृष्ण ने प्रेम की डोरी से बाँध लिया और जब जिधर खींचते हैं मैं खिचती चली जा रही हूँ ।

६—तिधर । ७—इधर । ८—खूब ।

९—वह भक्ति रूपी रस जिसका पान अमरत्व देता है ।

१०—घुमरी, नशा । ११—नशा । १२—पिटारा । १३—मीरा ।

हँस हँस मीरा कंठ लगायो, यो तो म्हांरे नौसर हार[1] ॥
बिष को प्यालो राणा जी मेल्यो, दयो मेड़तणी ने पाय ।
कर चरणामृत पी गई रे, गुण गोविंद रा[2] गाय ॥
पिया पियाला नाम का रे, और न रंग सोहाय ।
'मीरा' कहै प्रभू गिरधर नागर, काचो रंग उड़ जाय ॥

४८

कैसे जिऊँ री माई हरि बिन कैसे जिऊँ री ?॥
उदक[3] दादुर[4] पीनयत[5] है, जल से ही उपजाई ।
पल एक जल कूं मीन बिसरै, तलफत मर जाई ॥
पिया बिना पीली भई रे (बाला) ज्यों काठ घुन खाई ।
औषध मूल न संचरै रे (बाला), बैद फिर जाई ॥
दासी होय बन बन फिरूँ रे, बिथा तन छाई ।
'दास' मीर' लाल गिरधर, मिल्यो हे सुखदाई ॥

४९

ऐसी लगन लगाय कहाँ जासी[6] ।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, तलफ तलफ जिय जासी[7]
तेरे खातर[8] जोगण हूँगी करवत लूँगी कासी ।
'मीरा' के प्रभू गिरधर नागर' चरण कँवल की दासी ॥

१—नौ लड़ियों की माला । २—का ।
३—जल । ४—मेंढक । ५—मोटा, स्थूल ।
६—जाते हो । ७—जाता है । ८—वास्ते ।
९—काशी करवट का बड़ा माहात्म्य माना जाता हैं । वहाँ एक स्थान पर आरी लगी है जहाँ गला रेताने से मुक्ति मिलती है—।

५०

जोगिया तू कब रे मिलेगो आई ॥
तेरे ही कारण जोग लियो है, घर घर अलख जगाई[१] ॥
दिवस न भूख रैण नहिं निद्रा, तुझ बिन कुछ न सुहाई ।
'मीरा' के प्रभू गिरधर नागर, मिल कर तपत[२] बुझाई ॥

५१

सखी री मैं तो गिरधर के रंग राती[३] ॥
पचरंग[४] मेरा चोला रँग दे, मैं झुरमट[५] खेलन जाती ॥
झुरमट में मेरा साईं मिलेगा, खोल अडम्बर गाती[६] ।

१—अलखजगाना ।

२—हृदय ता ताप ।

३—मैं तो कृष्ण के रङ्ग में रंगी हूं (अनुरक्त हूँ) ।

५१—इस पद की रचना में कबीर की प्रणाली का अनुसरण किया गया है ।

चंदा जायेगा सुरज जायगा, जायग धरण अकासी
प्रेम हती का तेल बनाले, जगा करे दिन राती ॥

तुलना कीजिये

पानी पवन अकाश जाहिगो चन्द्र, जाहि गो सुरा हो ।

... ...

कहत कबीर सब दुनिया बिनशल रहल राम अविनाशी हो ।
पृ० ४४२ बीजक कबीर दास

४—पंचरङ्गा ।

६—एक प्रकार का खेल, इस खेल में युवतियाँ परस्पर हाथ पकड़ कर घूमती हैं ।

चंदा जायगा सुरज जायगा जायगा धरण अकासी ॥
पवन पाणी दोनों हीं जायँगे, अटल रहे अबिनासी ।
सुरत निरत का दिवला सँजोले, मनसा की कर बाती ॥
प्रेम हटी का तेल बना ले, जगा करे दिन राती ।
जिनके पिया परदेस बसत हैं, लिखि लिखि भेजें पाती ॥
मेरे पिय मो माहिं बसत हैं, कहूं न आती जाती ॥
पीहर बसूं न बसूं सास घर, सतगुरु सब्द सँगानी ।
ना घर मेरा ना घर तेरा, मीरा हरि रँग राती ॥

५२

तुम पलक उघाड़ो दीनानाथ, हूँ हाजिर नाजिर ।
कबको खड़ी ॥
साऊ[1] थे दुसमण होइ लागे, सब ने लगूँ कड़ी ।[2]
तुम बिन साऊ कोऊ नहीं है, डिगी[3] नाव मेरी ।
समँद अड़ी ॥
दिन नहीं चैन, रात नहीं निदरा, सूखूँ खड़ी खड़ी ।
बान बिरह के लगे हिये में, भूलूँ न एक घड़ी ॥
पत्थर की तो अहिल्या तारी, बन के बीच पड़ी ।
कहा बोझ मीरा में कहिये, सौ ऊपर एक धड़ी ॥
गुरु रैदास मिले मोहिं पूरे, धुर से कलम भिड़ी ।[4]
सतगुरु सैन[5] दई जब आ के, जोत में जोत रली ॥[6]

१—रक्षक । २—सब को कड़वी लगती हूँ, बुरी दीखती हूँ
३—हिलती है । ४—हमारे भाग्य खुल गये ।
५—इशारा । ६—मिली ।

५३

रमैया बिन नींद न आवे।
नींद न आवे विरह सतावे, प्रेम की आँच ढुलावे ॥
बिन पिया जाते मन्दिर अंधियारो, दीपक दाय[1] न आवे।
पिया बिन मेरी सेज अलूनी[2], जागत रैण बिहावे ॥
पिया कब रे घर आवे।
दादुर मोर पपिहरा बोलै, कोयल सबद सुणावे ॥
घुमँड़ घटा ऊलर[3] होई आई, दामिन दमक डरावे।
नैन कर लावे।
कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, बेदन कूण बुतावे।
बिरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावे ॥
जड़ी घस लावे।
को है सखा सहेली सजनी, पिया कूँ आन मिलावे ?
'मीरा' कूँ प्रभू कब रे मिलोगे, मन मोहन मोहिं भावे।
कबै हँस कर बतलावै ॥

५४

सोवत ही[4] पलका[5] में मैं तो, पलक लगी पल में पिउ आवै ॥
मैं जु उठी प्रभु आदर देन कूँ जाग परी पिव ढूँढ़ न पाये।
और सखी पिउ सूत गमाये, मैं जु सखी पिउ जागी गमाये ॥
आज की बात कहा कहूं सजनी, सुपना में हरि लेत बुलाये।
वस्तु एक जब प्रेम की पकरी, आज भये सखियन से भाये ॥

१—पसन्द। २—नीरस। ३—चढ़ना।
४—थी।

वो माहरों सुने अरु गुनि है, बाजे अधिक बजाये।
'मीरा' कहे सत्त कर मानो, भक्ति मुक्ति फल पाये ।।

५५

नैना लोभी रे बहुरि सके नहिं आय ।
रोम रोम नख सिख सब निरखत, ललच रहे ललचाय ।।
मैं ठाढ़ी गृह आपने रे, मोहन निकसे आय ।
सारंग[1] ओट तजे कुल अंकुस, बदन दिये मुसकाय ।।
लोक कुटम्बी बरज बरजहीं, बतियाँ कहत बनाय ।
चंचल चपल अटक नहिं मानत, पर हाथ गये बिकाय ।।
भली कहौ कोइ बुरी कहो मैं, सब लई सीस चढ़ाय ।
'मीरा' कहै प्रभु गिरधर के बिन, पल भर रह्यो न जाय ।।

५६

कभी म्हांरो गली आव रे, जिया की तपत बुझाव रे ।
म्हाँ रे मोहना प्यारे ।।
तेरे साँवलो बदन पँर, कई कोट[2] काम करे ।
तेरा खूबी के दरस पै, नैन तरसते म्हाँ रे ।।
घायल फिरूँ तड़पती, पीड़ जाने नहिं कोई ।
जिस लागी पीड़[3] प्रेम की, जिन लाई जाने सोई ।।
जैसे जल के सोखे, मीन क्या जिवें विचारे ।
कृपा कीजे दरस दीजे, मीरा नन्द के दुलारे ।।

५७

जावादे[4] री जावादे जोगी किसका मीत ।
सदा उदासी मोरी सजनी निपट अटपटी रीत ।।

१—नयन । २—कोटि, । ३—पीर । ४—जाने दे ।

बोलत बचन मधुर से मीठे, जोरत नाहीं प्रीत ।
हूं जाणूं या पार निभेगी छोड़ चला अध बीच ।।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, प्रेम पियारा मीत ।

५८

आवत मोरी गलियन में गिरधारी, मैं तो छुप गई ।
लाज की मारी ।।
कुसुमल[१] पाग[२] केसरया जामा, ऊपर फूल हजारी ।
मुकुट ऊपरे छत्र बिराजे कुंडल की छबी न्यारी ।।
केसरी चीर दरयाई को लेंगो,[३] ऊपर अंगिया भारी ।
आवते देखी किसन मुरारी, छुप गई राधा प्यारी ।।
मोर मुकट मनोहर सोहे, नयनी की छबि न्यारी ।
गल मोतिन की माल विराजे, चरण कमल बलिहारी ।।
ऊभी[४] राधा प्यारी अरज करत है, सुणजे किसन मुरारी ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर वारी ।।

५९

छाड़ो लंगर मोरी बहियाँ गहोना ।
मैं तो नार पराये घर की मेरे भरोसे गुपाल रहोना ।।
जो तुम मेरी बहियाँ धरत हो नयन जोर मेरे प्राण हरोना ।
वृन्दाबन की कुन्ज गली में, रीत छोड़ अनरीत करोना ।।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित टारे टरोना ।

१—कुसुमरङ्ग का । २—पगड़ी । ३—लहँगा । ४—खड़ी ।

६

प्रभु जी थे[1] कहाँ गयो नेहड़ी[2] लगाय।
छोड़ गया विश्वास संगाती प्रेम की बाती बराय[3] ॥
बिरह समंद[4] में छोड़ गया हो नेह की नाव चलाय।
'मीरा' कहे प्रभु कब रे मिलोगे ? तुम बिन रह्यो न जाय।

६

माई म्हांरी हरि न बूझी बात।
पिंड[5] में से प्राण पापी, निकस क्यों नहिं जात ?
रैण अँधेरी विरह घेरी, तारा गिणत निस जात।
ले कटारी कंठ चीरूँ, करूँगी अपघात ॥
पाट[6] न खोल्या, मुखाँ न बोल्या, सांझ लग परभात।
अबोलना[7] में अवध[8] बीती, काहे की कुसलात ॥
सुपन में हरि दरस दीन्हों, मैं न जाण्यो हरि जात।
नैन म्हाँरा उघड़ि आया, रही मन पछतात ॥



१—तुम। २—प्रेम। ३—जला। ४—समुद्र।
५—शरीर। ६—द्वार। ७—चुपचाप। ८—अवधि।

स्वजीवन सम्बन्धी

१

अब मीरा मान लीज्यो म्हारी, हाँ जी, थाँने[1] सइयाँ[2] बरजे सारी।
राजा बरजै राणी बरजै, बरजै सब परिवारी॥
कुँवर पाठवी[3] सो भी बरजै, और सेहल्या[4] सारी।
सीसफूल सिर ऊपर सोवै, बिंदली सोभा भारी॥
गले गुजारी[5], कर में कंकण, नेवर[6] पहिरे भारी।
साधुन के ढिग बैठ बैठ के, लाज गमाई सारी॥
नित प्रति उठि नीच घर जावो, कुल कूँ लगावो गारी[7]।
बड़ा घराँ का छोरू[8] कहावो, नाचो दे दे तारी॥
बर पायो हिंदुवाणे गो सूरज[9], अब दिल में कहा धारी।
तार्‌यो पीहर, सासरो[10] तार्‌यो, माय मोसाली[11] तारी॥
मीरा ने सतगुरु जी मिलिया, चरण कमल बलिहारी।

२

अब नहिं मानूँ राणा थाँरी, मैं बर पायो गिरधारी।
मनि कपूर की एक गति है. कोऊ कहो हजारी॥
कंकर कंचन एक गति है, गुँज[12] मिरच इक सारी।
अनड़ धणी को सरणो लीनो, हाथ सुमिरिनी धारी॥
जोग लियो जब क्या दिलगीरी, गुरु पाया निज भारी।

१—तुम्हें। २—स्वामी। ३—राजकुँवर। ४—सहेलियाँ।
५—एक आभूषण जो सिर पर पहिना जाता है। ६—एक आभूषण।
७—अपयश, कलंक। ८—बेटी। ९—हिन्दूजाति का सूर्य।
१०—ससुराल। ११—नाना का घर। १२—घुँघची।

साधू-संगत मँह दिल राजी, भई कुटुँब हूँ न्यारी ॥
क्रोड़ बार समझावो मोकूँ, चालूँगी बुद्ध हमारी।
रतन जड़ित की टोपा सिर पै, हार कंठ को भारी ॥
चरण घूँघरू घमस[1] पड़त है, म्हें कराँ श्याम सूँ यारी।
लाज सरम सब ही मैं डारी, यौ तन चरण अधारी ॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, झक मारो संसारी।

३

म्हाँरे सिर पर सालिगराम, राणा जी म्हारो काईं करसी[2]।
मीरा सूँ राणा ने कही रे, सुण मीरा मोरी बात।
साधों की संगत छोड़ दे रे, सखियाँ सब सकुचात।
मीरा ने सुन यों कही रे, सुन राणा जी बात।
साध तो भाई बाप हमारे, सखियाँ क्यूँ घबरात।
जहर का प्याला भेजिया रे, दीजो मीरा हाथ।
अमृत कर के पी गई रे, भली करें दीनानाथ।
मीरा प्याला पी लिया रे, बोली दोउ कर जोर।
तैं तो मारण की करी रे, मेरो राखणहारो और।
आधे जोहड़[3] कीच है रे, आधे जोहड़ हौज।
आधे मीरा एकली रे, आधे राणा की फौज।
काम क्रोध को डाल को रे, सील लिये हथियार।
जीती मीरा एकली रे, हारी राणा की धार[4]।
काचगिरी[5] का चौतरा रे, बैठे साध पचास।
जिनमें मीरा ऐसी दमके, लख तारों में परकास।

१—ध्वनि। २—क्या करेंगें। ३—तालाब। ४—खड्ग की धार। ५—बिल्लौर।

टाँड़ा जब वे लादिया रे, बेगी दीन्हा जाण।
कुल की तारण अस्तरी[1] रे, चली है पुष्कर[2] न्हाण॥

४

ऊदाबाई—थाने बरज बरज मैं हारी भाभी मानो बात हमारी।
राणे रोस कियो ता ऊपर, साधों में मत जा री।
कुल को दाग लगै छै भारी, निंदा हो रही भारी।
साधाँ रे संग बन बन भटकी, लाज गमाई सारी।
बड़ा घरा थे जनम लियो छै, नाचो दे दे तारी।
बरपायो हिंदवाणे सूरज, थे काई मन धारी।
मीरा गिरधर साध संग तज चालो हमारे लारी।
मीराबाई–मीरा बात नहीं जग छानी,[3] ऊदाबाईसमझो सुघर सयानी।
साधू मात पिता कुल मेरे सजन सनेही ज्ञानी!
संत चरन की सरन रैन दिन सत्त कहत हूँ बानी।
राणा ने समझावो जावो यैतो बात न मानी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर संता हाथ बिकानी।
ऊदा—भाभी बोलो बचन बिचारी।
साधों की संगत दुख भारी, मानो बात हमारी।
छापा तिलक गल हार उतारो पहिरो हार हजारी।
रतन जड़ित पहिरो आभूषण भोगो भोग अपारी[4]।
मीरा जी थे चलो महल में थानें सोगन[5] म्हारी।
मीरा—भाव भगत भूषण सजे सील सँतोष सिंगार।
ओढ़ी चूनर प्रेम की गिरधर जी भरतार।
ऊदाबाई मन समझ, जावो अपने धाम।
राज-पाट भोगो तुम्हीं, हमें न तासूँ काम।

१—तालाब २—स्त्री ३—छिपी ४—बहुत ५—शपथ

५

मीरा मगन भई, हरि के गुण गाय।
सांप पेटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय-धोय जब देखन लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय-धोय जब पीवन लागी, हो अमर अंचाय।
सूल-सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय।
मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे बिघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय।

६

राणा जी अब न रहूँगी तोरी हट की।
साध संग मोहिं प्यारा लागै लाज गई घूँघट की।
पीहर मेड़ता छोड़ा अपना, सुरत निरत दोउ चटकी।
सतगुर मुकुर दिखाया घट का नाचूँगी दे दे चुटकी।
हार-सिंगार सभी लो अपना, चूड़ी कर की पटकी।
मेरा सुहाग अब मोकूँ दरसा, और न जानै घट की।
महल किला राना मोहिँ न चहिये सारी रेसम पटकी।
हुई दिवानी मीरा डोलै, केस लटा सब छिटकी।

७

सीसोद्यो[1] रूठ्यो तो म्हाँरो काई कर लेसी ?
मैं तो गुण गोविंद का गास्याँ हो माई।
राणा जी रूठ्यो वाँरो[2] देस रखा सी।
हरि रूठ्या कुमलांस्या, हो माई।

१—सीसोदिया २—उसका

लोक-लाज की काण[1] न मानूँ।
निरभै निसाण[2] धुरास्यां[3] हो माई।
राम नाम की झांझ[4] चलास्यां।
भवसागर तर जास्यां हो माई।
'मीरा' सरन सबल गिरधर की।
चरण कमल लपटास्यां हो माई।

८

मीरा लागो रङ्ग हरी औरन सब रङ्ग अटक परी।
चूड़ो म्हाँरो तिलक अरु माला, शील बरत[5] सिंगारो।
आर सिंगार म्हाँरे दाप[6] न आवे, ये गुरु ज्ञान हमारो।
कोई निन्दो कोई बिन्दो मैं तो गुन गोविन्द का गास्याँ।
जिन मारग म्हारा साध पधारे, उन मारग मैं जास्याँ।
चोरी न करस्याँ, जिव न सतास्याँ कोई करसी म्हारो कोय।
गज के उतर के खर[7] नहिं चढ़स्याँ, ये तो बात न होय।
सती न होस्यां गिरधर गास्यां, म्हाँरो मन मोहो घण नामी।
जेठ बहू को नातो न राणा जी, हूँ सेवक थें स्वामी।
गिरधर कंथ गिरधर धनि म्हाँरे, मात पिता वोइ भाई।
थे थारे मैं म्हाँरे राणा जी, यूँ कहे मीराबाई।

९

हेली म्हाँरूँ हरि बिन रह्यो न जाय।
सासु लड़ै मेरी नणद खिजाये, राणा रहा रिसाय।
पहरो भी राख्यो, चौकी बिठाय्यो, ताला दियो जड़ाय।

१—लाज २—डंका ३—बजाती हूँ ४—झांझ=जहाज (ज+ह=झ) ५—शीलव्रत ६—पसन्द ७—गदहा

पूर्व जन्म की प्रीति पुराणी, सो क्यूँ छोड़ी जाय।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर और न आवे म्हाँरी दाय।

१०

न भावे थारौ देसड़[1] लो जी, रूड़ो रूड़ो[2]।
हरि की भगति करै नहिं कोई, लोग बसें सब कूड़ो।
माँग और पाटी उतार धरूँगी, न पहिरूँ कर चूड़ो।
'मीरा' हठीली कहै संतन से बर पायो छे पूरो।

११

राणा जी, तैं जहर दियो मैं जाणी।
जैसे कंचन दहत अगिन में निकसय बाराबाणी[3]।
लोक-लाज कुल काण जगत की, दह बहाय जस पाणी।
अपने घर का परदा कर ले मैं अबला बौराणी।
तरकस-तीर लग्यो मेरे हिय रे, गरक[4] गयो सनकाणी।
सब संतन पर तन मन वारों, चरण कमल लपटाणी।
'मीरा' को प्रभु राख लई है, दासी अपणी जाणी।

१२

सीसोद्या राणो, प्यालो म्हाँने, क्यूँ रे पठायो।
भली-बुरी तो मैं नहिं कीन्हीं राणा क्यूँ है रिसायो।
थाँने म्हाँने देह दिवी[5] है ज्याँ रो हरि-गुण गायो।
कनक कटोरे ले विष घोल्यो दयाराम पंडो लायो।
अठी उठी तो मैं देख्यो, कर चरणामृत पायो।
आज-काल की मैं नहिं राणा, जद[6] यह ब्रह्मंड छायो।

१—देश २—बुरा ३—खालिस ४—डूब गया, घुस गया
५—दी है ६—जब

मेड़तियाँ घर जन्म लियो है, मीरा नाम कहायो।
प्रह्लाद की प्रतिज्ञा राखी, खंभ फाड़ बेगो धायो।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर जन को बिड़द-बढ़ायो।

१३

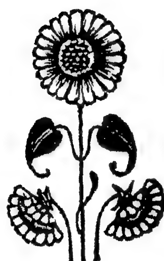
राणा जी मैं गिरधर रे घर जाऊँ।
गिरधर म्हाँरो साचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ।
रैन पड़े तब ही उठ जाऊँ भोर भये उठ आऊँ।
रैन-दिना वाके सँग खेलूँ, ज्यों रीझै ज्यों रिझाऊँ।
जो वस्त्र पहिरावे सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ।
मेरे उनके प्रीत पुरानी, उन बिन पल न रहाऊँ।
जहँ बैठावे जित ही बैठूँ, बेचै तौ बिक जाऊँ।
जन मीरा गिरधर के ऊपर बार बार बलि जाऊँ।

१४

राणा जी, म्हाँरी प्रीत पुरबली मैं क्या करूँ?
राम नाम बिन घड़ी न सुहावे राम मिले म्हाँरा हियरा ठराय[1]।
भोजनियाँ नहिं भावे म्हाँने नींद लड़ी नहिं आय।
विष का प्याला भेजिया जी जावो मीरा पास।
कर चरणामृत पी गई, म्हाँरे राम जी के विश्वास।
विष का प्याला पी गई जी भजन करे राठौर।
थाँरी मारी ना मरूँ, म्हाँरो राखणहारो और।
छापा तिलक बनाविया जी, मन में निस्चय धार।
राम जी काज सँवारिया जी, म्हाँने भावे गरदन मार!
पेयाँ[2] बासक[3] भेजिया जी, ये है चन्दन-हार।

१—जुड़ाता है, शीतल होता है। २—सन्दूक। ३—साँप।

नाग गले में पहिरिया, म्हाँरो महलो भयो उजार।
राठौड़ाँ की धीयड़ी[1] जी सीसोद्या के साथ।
ले जाती बैकुण्ठ को म्हाँरी नेक न मानी बात।
'मीरा' दासी राम की जी राम गरीब-निवाज।
जन मीरा को राख जो, कोई बाँह गहे की लाज।



१—बेटी।

होली और सावन

होली और सावन

१

फागुन के दिन चार रे, होली खेल मना[1] रे।
बिन करताल पखावज बाजे, अनहद[2] की झनकार रे।
बिन सुर राग छतीसूँ[3] गावे, रोम रोम रँग सार रे।
सील सँतोष की केसर घोली, प्रेम-प्रीत-पिचकार रे।
उड़त गुलाल, लाल भये बादल, बरसत रंग अपार रे।
घट[4] के पट[5] सब खोल दिये हैं,लोक-लाज सब डार रे।
होली खेल प्यारी पिय घर आये,सोइ प्यारी पिय प्यार रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरन कँवल बलिहार रे।

२

होली पिया बिन मोहिं न भावे, घर-आँगन न सुहावे।
दीपक जोय कहा करूँ हेली, पिय परदेस रहावे।
सूनी सेज जहर ज्यूँ लागे, सुसक सुसक जिय जावे।
नींद नैन नहिं आवे।

१—मन। २ अनहद की झनकार—जब भक्त परमेश्वर के ध्यान में अपने को पूर्णतः लीन कर देता है उस समय उसे एक प्रकार की ध्वनि गूँजती सी जान पड़ती है। यही दिव्य संगीत है और अनहद नाद है। पहुँचे हुये कबीर-पंथी कहते हैं कि वे ध्यान में लीन होने पर इस 'अनहद नाद' को सुनते हैं। अनहद नाद योगियों के मस्तिष्क में गूँजा करता है। ३—छः राग और छत्तीस प्रकार की रागिनियाँ मानी गई हैं। ४—हृदय। ५—द्वार।

कब की ठाढ़ी मैं मग जोऊँ निसि-दिन बिरह सतावे।
कहा कहूँ कछु कहत न आवे, हिवड़ो अति अकुलावे।
पिया कब दरस दिखावे ?
ऐसा है कोइ परम सनेही, तुरत सँदेसो लावे।
वा बिरियाँ कब होसीं मोकूँ हँस कर निकट बुलावै।
मीरा मिल होली गावे।

३

होली पिया बिन लागै खारी[1], सुनो री सखी मेरी प्यारी।
सूनो गाँव, देश सब सूनो, सूनी सेज अटारी।
सूनी बिरहिन पिव बिन डोलै, तज दइ पीव पियारी।
भई हूँ पा दुख कारी।
देश बिदेश संदेश न पहुँचै, होय अँदेशा भारी।
गिनतां गिनतां घिस गई रेखा आँगुरियाँ की सारी।
अजहुँ नहीं आये मुरारी।
बाजत झाँझ, मृदङ्ग, मुरलिया, बाज रही इकतारी[2]।
आई बसंत, कन्त घर नाहीं, तन में जर भया सारी।
स्याम मन कहा बिचारी।
अब तो मेहर[3] करो कुछ ऊपर, चित दे सुनो हमारी।
'मीरा' के प्रभु मिलिज्यो माधो, जनम जनम की क्वाँरी।
लगी दरशन की तारी।

४

किन सँग खेलूँ होली ? पिया तज गये हैं अकेली।
माणिक मोती सब हम छोड़े गल में पहनी सेली।

१—नीरस। २—एकतारा, एक प्रकार का वाद्य-यंत्र जिसमें एक तार लगा रहता है। ३—मेहरबानी, दया।

भोजन भवन भलो नहिं लागे, पिया कारन भइ गैली[1]।
मुझे दूर क्यों म्हेली ?
अब तुम प्रीत और से जोड़ी, हम से करूँ क्यों पहिली।
बहु दिन बीते अजहुँ न आये, लग रही ताला वेली।
किण बिलमाये हेली ?
स्याम बिना जिवड़ो[2] मुरझावे, जैसे जल बिन बेली[3]।
मीरा कूँ प्रभु दरसन दीज्यो जनम जनम की चेली।
दरसन बिन खड़ी दुहेली[4]।

५

रंग भरी राग भरी रंग सूँ भरी री,
होली आई प्यारी रंग सूँ भरी री।
उड़त गुलाल लाल भये बादल,
पिचकारिन की लगी झरी री।
चोवा[1] चंदन और अरगजा[2]
केसर गागर भरी धरी री।
'मीरा' कहे प्रभु गिरधर नागर,
चेरी होय पाँयन में परी री॥

सावन

१

मतवारो बादल आयो रे, हरि को सँदेसो कछु नहिं लायो रे।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल शब्द सुनायो रे॥
कारी अँधियारी, बिजली चमके, बिरहिन अति डरपायो रे।

१—पागल। २—जियरा, हृदय। ३—लतिका। ४—दुखी।

गाजे बाजे पवन मधुरिया[1] मेहा[2] अति झड़ लायो रे ॥
फूँके काली नाग बिरह की जारी 'मीरा' मन हरि भायो रे।

२

सुना मैं हरि आवन की आवाज़।
महल चढ़ि चढ़ि जोऊँ मोरी सजनी, कब आवें म्हाराज ॥
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल मधुरै साज।
उमग्यो इन्द्र[3] चहूँ दिसि बरसे, दामिन[4] छांड़ी लाज ॥
धरती रूप नवा नवा धरिया इन्द्र मिलन के काज।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, वेग मिलो म्हाराज ॥

३

रे पपैया प्यारो, कब को बैर चितारो ?
मैं सूती छी[5] अपने भवन में 'पिय पिय' करत पुकारो।
दाध्या ऊपर लूण लगायो[6], हिवड़े[7] करवत[8] सारो।
उठि बैठो वृच्छ की डाली, बोल बोल कंठ सारो।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरनां चित धारो।

१—मीठी हवा। २—मेघ, बादल। ३—जल का देवता इन्द्र। ४—बिजली। वर्षा ऋतु में पृथ्वी का नवीन रूप ग्रहण करना कवि के हृदय में यह कल्पना उदित करता है मानो पृथ्वी अपने प्रेमी इन्द्र से मिलने के लिये अपने को सजा रही है। ५—थी। ६—जले के ऊपर नमक छिड़कना। ७—हृदय। ८—आरा—पपीहे की 'पी' 'पी' की ध्वनि मेरे दग्ध हृदय पर नमक छिड़क रही है; जान पड़ता है कि मेरे हृदय पर आरा चल रहा है।

४

बरसे बदरिया सावन की, सावन की मनभावन की।
सावन में उमग्यो मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।
उमड़-घुमड़ चहुँ दिसि से आयो, दामिनि दमके झर-लावन की।
नन्हीं-नन्हीं बूँदन मेहा बरसे सीतल पवन सोहावन की।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर आनँद-मंगल गावन की।

५

नन्द-नँदन बिलमाई, बदरा ने घेरी आई।
इत घन लरजे, उत घन गरजे, चमकत बिज्जु सवाई।
उमड़-घुमड़ चहुँ दिसि से आया, पवन चले पुरवाई।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल शब्द सुनाई।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर चरन कमल चित लाई।

६

बादल देख झरी हो, स्याम मैं बादल देख झरी।
काली-पीली घटा उमंगी, बरस्यो एक घरी।
जित जाऊँ तित पानिहिं पानी, हुई सब भोम[1] हरी।
जा का पिव परदेस बसत है, भीजै बार[2] खरी[3]।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, कीज्यो प्रीत खरी।

७

सावन दे रह्यो जोरा रे, घर आओ जी स्याम मोरा रे।
उमड़-घुमड़ चहुँ-दिसि से आया, गरजत है घनघोरा रे।

१—भूमि। २—बाहर। ३—खड़ी।

दादुर मोर पपीहा बोले, कोमल कर रहा सोरा रे।[१]
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, ज्यों बारूँ सो ही थोरा रे।

८

भींजे म्हाँरो दाँवन[२] चीर[३] सावणियो[४] लूम[५] रह्यो रे।
आप तो जाँय बिदेसां छाये, जिवड़ो धरत न धीर।
लिख लिख पतियाँ सँदेसा भेजूँ, कब घर आवै म्हाँरो पीव।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, दरसन दोने[६] बलवीर[७]।



१—वर्तमान हिंदी के व्याकरण में कोमल को स्त्रीलिंग माना गया है अतः "कोमल सोर कर रहा रे" प्रयोग अशुद्ध है। 'कोमल शोर कर रही है' ऐसा होना चाहिये। २—अंचल। ३—वस्त्र। ४—सावन का मेघ। ५—छा रहा है। ६—दो। ७—श्रीकृष्ण।

परिशिष्ट—क

अन्तर्कथाएँ

भक्त नामदेव

पण्डरपुर के छीप जाति के श्री वामदेव जी, हरि के भक्त हो गये हैं। उनकी एक कन्या अल्पावस्था में ही विधवा हो गई। पिता ने कन्या को श्री पण्डरनाथ की पूजा और सेवा का उपदेश दिया और कहा कि उनकी प्रेम एवं श्रद्धापूर्ण सेवा से तेरे सारे मनोरथ पूर्ण होंगे। उसकी प्रेममय सेवा से भगवान ने उसे किशोर रूप में साक्षात् दर्शन दिया, वह ऐसा सुन्दर और आकर्षक रूप देख कर कामवासना से पीड़ित हो गई और सर्वकाम पूरण प्रभु ने उसकी कामना पूर्ण की। वह परिणाम-स्वरूप गर्भवती हुई और समाज में उसके पिता की निन्दा होने लगी। उस कन्या ने अपने पिता से सारा वृतान्त कह सुनाया और भगवान ने भी वामदेव जी को स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि जो कुछ तुम्हारी पुत्री ने तुमसे कहा है वह सब बिलकुल ठीक है। प्रसव-काल की पूर्णता पर उस कन्या के गर्भ से परमभक्त नामदेव जी का जन्म हुआ।

शैशव काल ही से नामदेव अपने नाना को भगवान की मूर्ति की पूजा करते देख कर अतीव प्रसन्न होते थे। कुछ बड़े होने पर वे स्वयं नहा कर पाषाण की मूर्ति को वस्त्र से सज्जित कर के पूजते थे। एक बार वामदेव को दूसरे गाँव जाना पड़ा, अतः वे ठाकुर जी की पूजा का भार नामदेव जी पर छोड़ गये, जिसे बालक नामदेव ने सानन्द स्वीकृत किया। नामदेव को सारी

रात छटपटी लगी रही कि कैसे प्रभात हो और मैं ठाकुर जी की पूजा में संलग्न होऊँ। प्रभात बेला आने पर बड़े प्रेम से दूध औटाया और एक सुन्दर कटोरे में सुगन्ध और मिश्री डालकर भगवान विट्ठलनाथ के पास चले। नामदेव ने ठाकुर जी के सामने दूध का कटोरा रखा और नेत्रों को मूँद कर प्रभु से स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करने लगे। आवरण उठा कर देखा तो दूध ज्यों का त्यों रखा था, यह देखकर नामदेव पुनः भगवान की प्रार्थना करने लगे। पर भगवान ने दूध न पीया। दूसरे दिन भी दूध उसी तरह पड़ा रह गया। सरल हृदय बालक ने जाकर माता से दूध न पीने की बात कही और इसी चिन्ता में दो दिनों तक कुछ नहीं खाया और न सोया। नामदेव ने तीसरे दिन फिर दूध का कटोरा भगवान की मंजुल मूर्ति के सम्मुख रख कर बोले—हे प्रभो! मुझ बालक की त्रुटियों को क्षमा कर दूध अङ्गीकार कीजिये। आप से मेरा विनीत निवेदन है कि दूध स्वीकार कर मुझे शोक और चिन्ता से मुक्त कीजिये। प्रेम-विह्वल हो कर वे बार बार निवेदन करने लगे और कहा "हे प्रभो! मेरे बारम्बार प्रार्थना करने पर भी आप हमारी पूजा स्वीकार नहीं करते हैं अतः कल प्रातःकाल हमारे नाना आकर हमें आपकी सेवा से सर्वथा वंचित कर देंगे। इस कष्ट से तो यही अच्छा है कि मैं प्राण त्याग दूँ।" यह कह कर वे तीक्ष्ण छूरी लेकर गले पर चलाने के लिये तैयार हो गये कि इतने में बड़े वेग से भक्तवत्सल भगवान ने आकर हाथ पकड़ लिया और कहा, "हे प्रिय बालक, ऐसा मत कर। ले, मैं दूध पिये लेता हूँ।"

कहते हैं कि आपकी प्रशंसा सुनकर दिल्ली के बादशाह ने बुलवाया और मरी हुई गाय जिलाने के लिए कहा। आपने एक

विष्णुपद गान करके गाय को जिला दिया। यह देखकर बादशाह गाँव देने लगे पर भक्त नामदेव जी ने अस्वीकार कर दिया। फिर एक मणि-जटित पलङ्ग भगवान के शयन के लिये प्रदान किया, नामदेव ने नदी के तट पर आकर सेज को जल में डाल दिया। यह सुन बादशाह ने बुलवाया और पूछा कि पलङ्ग क्या हुआ? मुझे वैसा ही पर्यंक बनवाना है। नामदेव ने वैसे और उससे भी बढ़-चढ़ कर पलंग जल से निकाले। बादशाह चकित हो गया।

ऐसे ही अनेक चमत्कार इनके विषय में भक्तमाल में लिखे हैं।

कर्माबाई

कर्माबाई जी जगन्नाथपुरी में रहती थीं। वह नित्य बड़े सबेरे ही श्री जगन्नाथ जी को खिचड़ी का भोग लगाया करती थीं, परन्तु वह किसी रीति या सदाचार पर ध्यान न देकर बिना स्नान-चौका किये ही खिचड़ी बना बड़े प्रेम के साथ अपने इष्ट देव की सेवा में अर्पण करती थीं। इसका ध्यान उनको सदा रहता था कि कहीं देर न हो जाय अथवा खिचड़ी अलोनी ही न रह जावे। भगवान बालक का रूप धर कर उनके घर आप ही प्रातःकाल भोजन कर जाते थे। एक दिन एक सन्त ने आकर कर्माबाई को साम्प्रदायिक आचार-विचार की शिक्षा दी। बाई जी अपने पूर्व कार्य के कारण भयभीत हुईं और सन्त की बताई रीति से खिचड़ी बना कर भगवान की सेवा में अर्पित किया पर इसके कारण बड़ा विलम्ब हो गया। यहाँ पण्डों ने श्री जगन्नाथ जी का पट खोलने पर देखा कि भगवान के श्रीमुख में खिचड़ी लगी

हुई है। उनके इस प्रकार चकित और विस्मित होने पर प्रभु ने कहा, "करमा नाम की एक बाई है वह मुझे नित्य खिचड़ी खिलाया करती है। मैं उसका सच्चा प्रेम देख कर नित्य खिचड़ी खा आया करता हूँ। कल एक सन्त के आदेश के कारण उसे विलम्ब हो गया अतः मैं जल्दी से बिना मुँह धुलाये ही चला आया हूँ।" सच है—"रामहि केवल प्रेम पियारा।"

सेना नाई

माधोगढ़ निवासी सेना स्वामी रामानन्द के शिष्य थे। वे भगवान के बड़े भक्त हो गये हैं। जिस प्रकार गाय अपने बछड़े की सहायता करती है उसी प्रकार भगवान ने उनका पालन किया और सहायता दी। वे बड़े साधु-सेवी और भगवद्भक्त थे। उनके विषय में ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि एक दिन राजा के यहाँ तेल लगाने जा रहे थे, मार्ग में एक साधु मिल गये। सेना ने साधु को अपने घर लाकर बड़े प्रेम से सेवा-सत्कार किया और उनके मन में इसका कुछ भय न था कि मुझे राजा के प्रसाद में जाने में बहुत विलम्ब हो गया। किन्तु जब राजा की सेवा का समय हुआ, भक्तवत्सल भगवान सेना नाई का रूप धारण कर राजा के शरीर में तेल-मर्दन के लिये गये और उन्हें प्रसन्न कर लौट आये। जब सेना नाई राजा के निकट पहुँचे, उन्होंने बड़ी नम्रता से विलम्ब के लिये क्षमा माँगी। राजा पहिले तो बड़ा चकित हुआ; किन्तु फिर भगवन्-स्पर्श होने से भक्ति का प्रभाव जान गया और सेना के चरणों पर गिर पड़ा। तदुपरान्त राजा सेना नाई का शिष्य हो गया और शेष जीवन भगवन्-भक्ति में व्यतीत करने लगा। अब तक उनके वंश के लोग सेना-वंश के चेले होते हैं।

धना भक्त

धना भी भगवान के परम भक्त हो गये हैं। उनकी भक्ति के विषय में ऐसा प्रसिद्ध है कि उनका खेत बिना बोये ही जम गया था। एक समय की बात है कि धना के घर पर कुछ सन्तों का आगमन हुआ, धना ने उनके आदर और सत्कार में बीज के लिये संचित गेहूँ खिला दिया। माता-पिता के भय से खाली खेत में हल चलवा दिया जिस से जान पड़े कि खेत में बीज बोये हैं। तथापि भगवान की महती कृपा से उनके खेत का गेहूँ ऐसा जमा कि आसपास के किसान उनके खेत की प्रशंसा करने लगे। जग में लोग यह सुन कर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुये कि बीज बोयां गया किसी और खेत में (अर्थात् सन्तों के अन्दर) और उपजा अन्य खेत में (अर्थात् पृथ्वी के खेत में)। परमेश्वर की लीला अपरम्पार है।

सदना भक्त

सदनाजी का जन्म कसाई के कुल में हुआ था पर वे स्वयं जीवों का वध नहीं करते थे। दूसरे कसाइयों के यहाँ से माँस लाकर बेचा करते थे। उनके पास एक गण्डकी सुत शालग्राम जी थे जिससे ये अनजान में बटखरा बना कर माँस तौला करते थे। एक दिन एक साधु ने उनके इस कार्य को देखा और कहा कि तुम नितान्त मूर्ख हो। ये तो शालग्राम हैं, इनके तुम माँस तौल कर अनर्थ करते हो। लाओ, हमें दे दो। सदना को अपने पूर्व कार्य पर बड़ा पश्चाताप हुआ और उन्होंने शालग्राम को साधु को अर्पित कर दिया। घर ले जाने पर साधु को भगवान ने स्वप्न में आदेश दिया कि ऐ साधु! तुम हमें

सदना के पास ही पहुँचा दो। वह हमारा भक्त है, मेरा नाम लेता और सप्रेम गुण-गान करता है और हम उसके प्रेम पर रीझे हैं। साधु ने शालग्राम की मूर्ति वापस कर दी; सदना यह सारी कथा सुन कर दत्तचित्त होकर भगवान की पूजा करने लगे और श्री जगन्नाथ जी के दर्शन को चल निकले। मार्ग में इनके सुन्दर रूप को देख कर इन पर एक स्त्री मोहित हो गई और उसने इनसे अंग-संग की प्रार्थना की। किन्तु भक्त सदना ने अस्वीकार कर कहा कि "जो तू गला भी काट डाले तो भी मैं तुझ से प्रेम नहीं कर सकता।" उस कुलटा ने इसका उलटा ही अर्थ समझा और जाकर अपने पति का कण्ठ काट डाला और आकर पुनः सदना से अङ्ग-सङ्ग की प्रार्थना करने लगी। किन्तु सदना ने फिर स्वीकार न किया। अस्वीकार करने पर कुलटा ने बड़ा शोर मचाया है कि इस दुष्ट ने मुझे ले चलने के लिये मेरे पति का सिर काट डाला है। गाँव के लोगों की भीड़ एकत्र हो गई। गाँव के हाकिम ने सदना जी को पकड़ कर सारा हाल पूछा, इस पर वे हँस कर बोले, "हाँ, हमने मारा है।" हाकिम ने वध न कर इनका हाथ कटवा डाला। हाथ कट जाने पर वे श्री जगन्नाथ जी को चले, जगन्नाथ जी ने स्वयं पण्डों के हाथ इन्हें लाने को पालकी भेज दी और वे इन्हें भगवान की सेवा में लाये। भगवान ने कहा, "सदन! तुम कसौटी पर कसने पर पूरे उतरे। मैं तुम पर बड़ा प्रसन्न हूँ।"

राजा अम्बरीष की कथा

अम्बरीष नाम का एक परम प्रतापी राजा हो गया है। सब प्रकार के लौकिक सुखों और वैभव से युक्त होने पर भी वह भग-

वान का अनन्य भक्त था। वह बड़ी श्रद्धा और विधि से एकादशी का व्रत रखता था। एकादशी की रात्रि में जागरण कर द्वादशी के दिन वह ब्राह्मणों को धन-धान्य का अमित दान देता था और तत्पश्चात् पारण करता था। एक बार दुर्वासा ऋषि राजा के निवास-स्थान पर आये। राजा ने सेवा-सत्कार किया और भोजन के निमित्त प्रार्थना की किन्तु दुर्वासा ने स्नान के उपरान्त भोजन करने की इच्छा प्रगट की। दुर्वासा को स्नान में विलम्ब होगया, इधर उस दिन दो ही दंड द्वादशी थी। राजा को पारण की चिन्ता हुई और ब्राह्मणों की सम्मति एवं अनुमति से राजा ने नारायण का चरणामृत पान कर लिया। लौटने पर यह समाचार सुन कर दुर्वासा क्रोधाग्नि में जल उठे और राजा को मारने को उद्यत हुये। जटा से काल-कृत्या नाम्नी अग्नि उत्पन्न कर भस्म करना चाहा, पर भक्तवत्सल भगवान दुर्वासा का गर्व सहन न कर सके, तत्क्षण भक्त की रक्षा के हेतु सुदर्शन चक्र को भेजा। सुदर्शन ने कालकृत्या को भस्म कर दुर्वासा का पीछा किया। दुर्वासा सभी लोकों में भागते भागते फिरे पर उनकी रक्षा कोई न कर सका। नितान्त बिष्णु की शरण में आने पर बिष्णु ने दुर्वासा को अम्बरीष से क्षमा माँगने की आज्ञा दी। निराश होकर दुर्वासा अम्बरीष के पास गये। राजा ने प्रार्थना कर सुदर्शन चक्र को शीतल कर दिया और ऋषि को क्षमा कर उनकी पूजा-अर्चना की। इस प्रकार भगवान ने अपने भक्त की रक्षा की।

पीपा भक्त

गाँगरौन नामक गढ़ के राजा पीपा जी देवी के परमभक्त थे। देवी एवं साधुओं की पूजा में वे सदा तत्पर रहते थे। देवी के

मन्दिर में चालीस मन भोग प्रतिदिन चढ़ता था। एक बार उनके स्थान पर कई सन्त आ पड़े। पीपा जी ने उनका बड़ा सत्कार किया। सन्तों ने भगवान से प्रार्थना की कि "राजा की मति सुधार दीजिये।" उस दिन राजा ने रात को एक भयानक स्वप्न देखा और प्रेत ने उसकी खाट उलट दी। पीपा जी भयभीत हो कर देवी के मन्दिर में आये, देवी ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया और आज्ञा दी की हरि की शरण में जाओ। राजा तदुपरान्त हरि के परम भक्त हो गये। तीव्र विराट जागरित होने पर पीपा जी ने श्री रामानन्द जी का शिष्यत्व काशी में अंगीकार किया। वे अनेक गुणों से भूषित थे और बड़े ही सन्त-सेवी थे। उनके विषय में अनेक कथायें प्रसिद्ध हैं जो उनकी उच्चकोटि की भक्ति की प्रदर्शिका हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि आक्रमण की अभिलाषा से आया हुआ व्याध भी अपनी क्रूर प्रकृति छोड़कर उनके अधीन हो गया। पीपा जी ने उस व्याध को अमूल्य उपदेश दिया; हिंस्र पशु पर भी वे विजयी हुये।



परिशिष्ट—ख

(ख)

संवत् १७६९ में प्रियादास जी का लिखा हुआ मीराबाई का चरित

१

मेरतौ जनम-भूमि झूमि हित नैन लगै,
पगे गिरधारी लाल पिता ही के धाम मैं
राना कै सगाई भई, करी व्याह स्यामा नई
गई मति बूड़ि वा रँगीले घनश्याम मैं।
भाँवरैं परत मन साँवरे सरूप माँझ,
ताँवरै सी आवैं, चलिबे कौ पति-ग्राम मैं।
पूछैं पिता-माता पर आभरन लीजिये जू
लोचन भरत नीर कहा काम दाम मैं।

२

देवौ गिरधारीलाल, जौ निहाल कियौ चाहौ
और धन-माल सब राखियो उठाय कै,
बेटी अति प्यारी प्रीति रँग चढ़्यो भारी
रोय मिली महतारी कही लीजिये लड़ाय कै
डोला पधराय, दृग दृग सो लगाय चली
सुख न समाय चाय, प्रानपति पाय के,
पहुँची भवन सासु देवी पै गवन कियौ
तिया अरु बर गँठ जो र्यौ भाय कै,

३

देवी के पुजायबे को कियौ लै उपाय सासु,
बर पै पुजाइ, पुनि बधू पूजि भाखियै।

बोली जू बिकायौ माथौ लाल गिरधारी हाथ,
और कौन नवै एक वही अभिलाखियै ।
बढ़त सुहाग जाके पूजे ताते पूजा करै,
करौ जिनि हठ सीस पायनि पै राखियै ।
कही बार बार तुम यही निरधार जानो,
वही सुकुमार जापै वारि फेरि राखिये ।

४

तब तो खिस्यानी भई अति जरि बरि गई,
गई पति पास यह बधू नहीं काम की ।
अबहीं जवाब दियौ, कियौ अपमान मेरौ,
आगे क्यों प्रमान करै मरै स्वास चाम की ।
राना सुनी कोप कर्यौ, धर्यौ हिये मारिबोई
दई ढौरि न्यारी देखी रीझी मति बाम की ।
लालनि लड़ावै गुन गाय कै मल्हावै
साधु-संग ही सुहावै जिन्हें लागी चाह स्याम की ।

५

आय के ननँद कहै, "गहै किन चेत भाभी,
साधुनि सों हेतु मैं कलंक लागै भारियै ।
राना देस-पति लाजै; बाप कुल-रती जात,
मानि लीजै बात वेगि संग निरवारियै ।"
"लागे प्रान साथ संत, पावत अनंत सुख,
जाको दुख होय, ताको नीके करि टारियै ।"
सुनि कै, कटोरा भारि गरल पठाय दियौ,
लियौ करि पान रंग चढ़्यौ ये निहारियै ।

६

गरल पठायो, सो तो सीस लै चढ़ायौ,
  संग त्याग विष भारि, ताकी भार न सँभारिहै।
राना ने लगायौ चर बैठे साधु ढिग ढर,
  तब ही खबर कर मारौ चहै धारी है।
राजै गिरधारि लाल तिरही सो रंग लाल,
  बोलत हँसत ख्याल, कान परि प्यारी है।
जाय कै सुनाई भई अति चपलाई,—
  आयौ लिये तलवार, दै किवार, खोलि त्यारी है।

७

"जाते सङ्ग रङ्ग भीजि, करत प्रसङ्ग नाना,
  कहाँ वह नर गयौ बेगि दै बताइये।"
आगे ही बिराजै, कछू तोसों नहीं लाजै,
  आसूँ देखि सुख साजै, आँखें खोलि दरसाइये।
भयोई खिसानौ राना, लिख्यौ चित्र भीत मान्नो,
  उलटि पयानौ कियौ, लेकु मन आइयै।
देख्यौ हूँ प्रभाव हियै भाव मैन मिस्यौ जाइ,
  बिना हरि-कृपा कहो कैसे करि पाइयै।

८

विषई कुटिल एक भेष धारि साधु लियौ,
  कियौ यौ प्रसङ्ग, "मों सों अङ्ग-सङ्ग कीजिये।"
आज्ञा मोंकों दई आय लाल गिरिधारि
  "अहो सीस धारि लई करि भोजन हूँ लीजियै।

संतनि-समाज में बिछाय सेज बोलि लयौ,
संक अब कौन की निसंक रस भीजिये।"
मुख भयौ, विषै-भाव सब गयौ,
नयौ पायन पै आय "मों कों भक्ति दान दीजिये"

९

रूप की निकाई भूप अकबर भाई हिये,
लिये संग तानसेन, देखिबे को आयो है।
निरखि निहाल भयो, छवि गिरधारीलाल,
पद सुख जाल एक तब ही चढ़ायो है।
वृन्दावन आई, जीव गुँसाईं जू सों मिलि झिलीं,
तिया मुख देखिबे को पन ले छुटायो है।
देखी कुंज कुंज लाल प्यारी सुख पुंज भरी,
छरी उर माँझ, आय देस बन गायो है॥

१०

राना की मलीन अति देखि, बसी द्वारावति,
रति गिरधारीलाल, नित ही लड़ाइयै।
लागी चर पति भूप भक्ति को सरूप जानि,
अति दुख मानि, विष श्रेणी लै पठाइयै।
वेगि लै कै आवो मोंकों प्रान दै जिवावो,
अहो गयो द्वार धरनौ दै विनती सुनाईयै।
सुनि विदा होन गई राय रणछोर जू पै,
छाड़ौ राखौ दीन लीन भई नहीं पाइयै॥

॥ समाप्त ॥